

अध्याय-तीन

सामाजिक यथार्थ :  
अर्थ और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में

## अध्याय-तीन

### सामाजिक यथार्थ : अर्थ और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में

#### 3.1 आर्थिक यथार्थ

समकालीन समाज में हमारी आर्थिक व्यवस्था ने हमें भयंकर आर्थिक विषमता के कगार पर खड़ा किया है। राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता और भ्रष्टाचार के कारण भारत का आर्थिक ढाँचा बदल गया है। “जनता आश्वासन भोगी बनी, परिणामतः भारत का मैला आँचल शहरों में कौड़ियों के मोल खरीदा जाने लगा। भारत की स्वतंत्रता के बाद जितना धन भारतीय प्रगति के लिए व्यय किया गया, उसमें से यदि व्यक्तिगत हिस्सा न निकाला गया होता तो निःसंदेह एक दूसरा भारत बनाकर खड़ा किया जा सकता था और न इतनी कर वृद्धि करनी पड़ती। मोह कुर्सी के लिए जगा तो कैंची चलानी पड़ी। कैंची और कुर्सी साधन साध्य बन गई।”<sup>1</sup> अर्थ जीवन के लिए महत्वपूर्ण है किन्तु साधन ही रहना चाहिए, ‘साध्य’ नहीं।

समाज में निम्नवर्ग, मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के स्तरीकरण में आर्थिक विषमता मध्यवर्ग को अधिक भुगतानी पड़ती है। “आर्थिकशोषण को समाप्त करना और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटाना समाजवादी व्यवस्था का परमलक्ष्य है। किन्तु सच तो यह है कि व्यावहारिक स्तर पर समाजवादी मूल्यों की स्थापना का कोई प्रयास ही नहीं किया गया। समाजवाद धीरे-धीरे बीमार पड़ता गया।”<sup>2</sup> भारत ने स्वयं विकासोन्मुख राष्ट्र घोषित कर नए-नए कारखानें खुला दिए। लेकिन गरीब लोग अभी भी गरीब रहे हैं। “गरीबों की स्थिति अब भी उसी प्रकार की है जैसे पहले थी। विभिन्न कानून बने, पर उसमें अमीरों का ही लाभ हुआ है।”<sup>3</sup> भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, धोखेबाजी आदि कई समस्याएँ देश में उभरने लगीं। सच कहें तो आज मानवीय मूल्यों का नाप-तोल केवल अर्थ के आधार पर ही संभव है। ईमानदारी से काम करनेवालों की संख्या आज कम हो रही है। “समकालीन जीवन में आदमीयत की ऊँचाई नापने का पैमाना मात्र अर्थ रह गया है।”<sup>4</sup> अर्थात् आज ‘पुरुष अर्थस्य दास’ का नारा व्यवहार में आ गया है।

भारत की आज की आर्थिक स्थितियों से हिन्दी की लेखिकाओं ने भी प्रभावित होकर साहित्य लेखन शुरू किया है। “महिला लेखिकाएँ एक विशेष दायरे की बात करती हैं - यह दायरा है पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग अर्थात् वह वर्ग जो स्वयं इन लेखिकाओं का है। निम्नवर्ग का अनुभव इनके पास लगभग नहीं है। इन महिला लेखिकाओं ने महिलाओं की स्थितियों को ही प्राथमिकता दी है। इन उपन्यासों का विषय परिवार और समाज तक ही विशेष रूप से सीमित है। इसलिए राजनीति और आर्थिक मंच में इनका प्रवेश अपेक्षाकृत कम ही हो सका है।”<sup>5</sup> फिर भी अपने अनुभव की पृष्ठ भूमि के आधार पर महँगाई, बेरोज़गारी, गरीबी जैसी अनेक आर्थिक समस्याओं की यथार्थता का चित्रण करने में हिन्दी की अधिकांश लेखिकाएँ सक्षम ही रही हैं। आगे उसपर विचार करें।

### 3.1.1 पूँजी मात्र प्रतीक

भारत स्वतंत्र होने पर भी आर्थिक क्षेत्र में पिछड़ेपन की राह पर है। पूँजीवादी सभ्यता का प्रभाव आज भी भारतियों पर है। वर्गभेद भी आर्थिक स्तरीकरण के आधार पर हुआ। मार्क्स का मानना है कि जिस समाज में ‘पूँजी’ को पकड़ने की चेष्टा होती है वहाँ आर्थिक समस्याएँ जन्म ले लेती हैं। पूँजीवाद की जड़ें गहरे पैठ गई हैं, अतः उसे नष्ट करने के लिए मनुष्य को ‘क्रान्ति’ का सहारा लेना पड़ेगा। तभी पूँजीवाद से मुक्ति मिल सकती है। पूँजीपति पूँजी जमा करके पूँजीहीन लोगों का निरन्तर शोषण करते आये हैं। धनलालसा ही समाज में शोषण क्रिया को बढ़ावा देती है। समाज में ज़मीन्दार, अधिकारी वर्ग, राजनीतिज्ञ, समाजसेवक आदि विभिन्न चाल से शोषण की प्रक्रिया जारी रखते हैं।

महिला लेखिकाओं ने भी अर्थ के महत्व पर आवाज़ देकर अपने उपन्यासों के ज़रिए इसकी जटिलता की ओर प्रकाश डाला है।

प्राचीनकाल में अपनी योग्यता एवं परिश्रम के आधार पर मनुष्य ‘धन’ कमाता था। लेकिन आज आर्थिक विषमता से त्रस्त मानव धन संपादन के लिए कई मार्ग ढूँढ लेता है। गाँव, शहर एवं महानगरीय ज़िन्दगी में यह परिवर्तन हम देख सकते हैं। ‘रुपया’ ही आज समकालीन मानव का एकमात्र लक्ष्य बन गया क्योंकि धनवान को ही समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान मिलते हैं और गरीबी की स्थिति अधिक निचले स्तर पर ही डूब जाती है। महिला रचनाकार स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद के बदलाव को समझकर ही ‘धन’ की अदम्य लालसा की कामना की ओर इशारा

देती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'नेहरु' जी ने पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण से आर्थिक संकट को सुधारना चाहा। लेकिन समकालीन समाज में भी यही स्थिति मौजूद है।

आज व्यक्ति पर पैसे की सत्ता है। मानव को तोलने का मानदण्ड आज धन है। मानव धनप्राप्ति के मायाजाल में फँस रहा है। मान-सम्मान, प्रतिष्ठा, गर्व सभी का तलधरा अर्थ की नींव ही है। 'कोरजा' उपन्यास में जुम्न जैसे घृणित पात्रों के संबन्ध में मेहरुत्रिसा परवेज़ लिखती है - "इज्जत, आज के ज़माने में इज्जत सिर्फ़ पैसेवालों की है। पैसे से ही दुनिया में इज्जत है। पैसा पास है तो सब पूछेंगे वरना कोई नहीं?"<sup>6</sup> संसार में अर्थ का माया प्रपंच इज्जत का रूप भी धारण कर लेता है। पैसे की लालच मानव को दानव का रूप ही देती है। 'कोरजा' का जुम्न जैसा पात्र इसका प्रमाण है।

शशिप्रभा शास्त्री जी ने 'क्योंकि' उपन्यास में पैसे का सम्मान कैसे होता है? इसपर अपना विचार व्यक्त किया है। उपन्यास का पात्र श्यामा ने कम दहेज के कारण अपने जीवन में उत्पन्न हुई विडंबनाओं को व्यक्त किया है।

शशिप्रभा शास्त्री जी के 'सीढियाँ' उपन्यास में सुकेत ने अपने से अधिक उम्रवाली मनीषी से शादी करना चाहा क्योंकि 'सुकेत' का बैंक बालन्स बहुत अधिक है इसलिए मनीषी ऐसा सोचती है - "उसने यदि सुकेत से शादी की तो लोग कहेंगे - सुकेत की दौलत पर मर मिटी, न उम्र देखी, न संबन्ध, पैसा आदमी को सचमुच अन्धा बना देता है।"<sup>7</sup> मानवीय मूल्यों से ज़्यादा धन-दौलत का प्रभाव मानव मन पर अधिक हावी होता है।

अर्थ का एकाधिकार जानकर ही मानव आर्थिक सुरक्षा मज़बूत करने के लिए विदेश में जाकर काम कर रहे हैं। सिम्मीहर्षिता के 'रंगशाला' में श्यामल एवं राधिका विदेश में रहते हैं। यहाँ अर्थ के बढ़ते प्रभाव पर ज़ोर देकर लेखिका उनसे कहलवाती हैं - "यह भी एक कड़वी सच्चाई है कि, पैसा चाहे जितना हो जाये, हम वहाँ रहते हैं। हमेशा दूसरी श्रेणी के ही नागरिक एशियावासी अपनी गरीबी धोने के लिए आनेवाली तीसरी दुनिया के कीड़े-मकौड़े अचानक भड़क उठानेवाली नस्ली हिंसा के शिकार, जिन्हें हॉयर (रखना) और फॉयर (निकालना) करना दोनों ही आसान है। इसलिए वहाँ दबकर रहना पड़ता है।"<sup>8</sup> पैसा के महत्व पर आगे भी उन्होंने लिखा है कि "हज़ार रास्ते हैं बचने-बचाने के, ख़ूब पैसा हो तो उसे अपने इस देश में ही भोगा जा सकता है, उसके बल

पर दूसरों पर हावी हुआ जा सकता है। चंद सिक्कों से दूसरे इन्सान की मेहनत को खरीदा जा सकता है और दुत्कारा भी जा सकता है।”<sup>9</sup> पैसे के बलबूते पर ही आज सामाजिक प्रतिष्ठा एवं विलासिता खूब चलाती रहती है। इसलिए ‘पैसा कमाना’ ही एकमात्र लक्ष्य मानकर ज़िन्दगी की राह पर मानव घूमता-फिरता रहता है।

अर्थ की महत्ता का खूब अनुभव करके ही प्रभा खेतान के ‘पीली आँधी’ उपन्यास के माधो बाबू ने अपने भाई की विलासिता पर ध्यान दिया है। माधो बाबू ने अधिक कष्ट सहते हुए और तनतोड़ मेहनत से ही आर्थिक उपलब्धि प्राप्त की। लेकिन अपने भाई को इसी की चिन्ता भी नहीं है। माधो बाबू सोचता है - “समस्या तो यह है कि मैं अकेला पड़ता जा रहा हूँ। सांवर को कोयलखान के संबन्ध में ज़रा भी सोच नहीं। हाड़ तोड़कर कैसे पैसा कमाया जाता है, इससे वह बिल्कुल अनभिज्ञ है। वह तो कभी यह जानने की चेष्टा भी नहीं करता कि रुपया कहाँ से आता है? बस मेरे प्रति एक बाल-सुलभ शिशुवत समर्पण है। उसके अनुसार तो - भाईजी है ना। अपने ही सब कुछ संभालेंगे, भाई जी के रहते भला हम लोगों को कोई हाथ लगाने रहा। अंग्रेज़ी की सारी पढ़ाई-लिखाई धूल में गई। टाई की गाँठ बाँधते, ब्राइलक्रीम लगाकर बाल संवारने में ही तो घंटा भर लग जाता है। मैं मना नहीं करता। खर्च करो, धन को ऐसे परनाले में तो मत बहाओ। जहाँ समूचा का समूचा मूल ही खत्म हो जाए।”<sup>10</sup> माधो बाबू ने पैसा कमाने की अनभिज्ञता एवं पैसा की पूँजी की ओर यहाँ इशारा किया है।

पहले ही यह सूचित किया है कि पैसे की अद्भुत चमत्कारी शक्ति दानव को देवता एवं देवता को दानव भी बनाती है। निरुपमा सेवती ने ‘दहकन के पार’ में ऐसे डाक्टर का चित्रण किया है जो गरीबों का इलाज मुफ्त के रूप में और अमीरों से दुगुना पैसा भी वसूल करता है। डॉ. इक्बाल ने अपनी दुनिया स्वयं बनाने की ऐसी ठानी की कि वह हर खोल तोड़ता चला गया और झुठला दिया इस पंक्ति को.... “मुश्किल है इन्सान का इन्सान होना। और साबित कर दिखाया कि मुश्किल नहीं है इन्सान का इन्सान होना। इक्बाल का आदर्श केवल पैसा कमाने मात्र नहीं है जो निरीह लोगों के इलाज के लिए भी है। इक्बाल जैसा आदर्शी डाक्टर विरले ही मिल जाते हैं।”<sup>11</sup>

‘दहकन के पार’ में असलम के माध्यम से उपन्यासकार ने पैसे की बुराईपन पर अपना विचार व्यक्त किया है। असलम सारी बुराइयों की जड़ पैसा मानता है। उसे पता है कि अगर उसके पास पैसा होता तो उसके प्रेम के बीच धर्म भी आड़ नहीं लाता था किन्तु वह अपनी जीत पैसे से

भी नहीं हासिल कर सकता। पैसा हो तो सभी बुराइयाँ दब जाती हैं, अतः रुपया चीज़ों का अर्थ आसानी से बदला देता है।”<sup>12</sup> असलम धर्म से बढ़कर धन को अधिक महत्व देता है। उसका कहना है “हम लखपति होते तो ये अलग- अलग धर्मवाली बात भी उतनी आड़ें न आती। पैसे हों तो सब हरकतें अच्छी बन जाती हैं। रुपया चीज़ों के अर्थ बड़ी आसानी से बदल देता है।”<sup>13</sup> धार्मिक ढाँचा भी बदलाने की शक्ति धन की बढ़ोत्तरी पर निर्भर है।

भौतिक सुख-सुविधाओं की आसक्ति एवं धन कमाने का लालच मानव को रिश्वत माँगने के लिए उतावला बनाता है। ‘सहचारिणी’ में योगेश ने दूसरों की सहायता से ही पढ़ाई की थी। नीलू से प्रेमविवाह करने पर वह वर्कचार्ज पर काम करता था। काम में तरक्की पाकर इंजनीयर बन जाने पर उसमें पैसे की घमण्ड भी ज़ारी रही और अपनी पत्नी को भी विषैली आँखों से वह देखने लगा। योगेश के मत में “आदमी जब घर से बाहर निकलता है, तब उसका हर कदम यथार्थ की ठोस धरती पर पड़ता है और आज की दुनिया का सबसे बड़ा यथार्थ, सबसे बड़ी ताकत है पैसा।”<sup>14</sup> अधिक मनोरंजन के लिए अधिक धन की ज़रूरत है। इसलिए अधिक रिश्वत लेने पर योगेश को सस्पेंशन भी मिल गया। खबर सुनकर नीलम को आश्चर्य नहीं हुआ। “यह तो एक न एक दिन होना ही था क्योंकि जीवन में और ऊँचा उठने की होड में कई बार आदमी विवेक का धरातल छोड़ देता है। सीमा का साथ होने पर भ्रष्टाचार का कारोबार बढ़ना स्वाभाविक है। मनुष्य जितनी अधिक ऊँचाई से गिरता है, चोट उतनी ही अधिक लगती है।”<sup>15</sup> धन का चमकीला रंग उसे अन्धा बनाता है। पैसे की ताकत के सामने पति-पत्नी बन्धन भी तुच्छ मात्र है।

आज आदमी दिन-ब-दिन स्वार्थ केन्द्रित होता जा रहा है। अर्थ ही पद-प्रतिष्ठा का द्योतक है। इसलिए व्यक्ति अधिक से अधिक अर्थोपार्जन के लिए नैतिक-अनैतिक, मान्य-अमान्य कार्य कर भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है। ‘क्योंकि’ उपन्यास में महेश के पिता के माध्यम से शशिप्रभा जी ने इस सत्य को स्पष्ट किया है - “वह सारा रुपया ब्लाक का है, जिसका महेश के बाप के किसी खाते में कोई हिसाब नहीं है और रज़ाई में छिपाकर इसलिए रखे गये हैं कि उसपर इनकमटैक्स न लगे। कैसे बताएँगे कि कहाँ से आया वह रुपया?”<sup>16</sup>

‘ज्वालमुखी के गर्भ’ में मालती जोशी ने बताया है कि पैसे की आड़ में मानवीय बन्धन भी निस्सार है। माँ एवं मौसी को जब बड़े लडके के लिए लडकी को खोज लेने पर पता चला कि उसकी सगाई एक पंजाबी - क्रिश्चियन लडकी से हो गयी है। माँ और मौसी के लिए यह सबसे

बडा चैलेंज था। धनी माँ ने कहा - “पैसे से ही सब सुख मिल जाते हैं। छोटी, मुझे देख, कितना दुःख छाती में छिपाए बैठी हूँ। पति को भाग्य ने छीन लिया, बेटे को पता नहीं कौन कहाँ की लडकी मोहकर ले गयी। अब इस घर को, घराने को ओढ़ूँ कि बिछाऊँ? तेरे साथ तो मेरा सबकुछ है।”<sup>17</sup> मतलब यह है कि पैसे के माध्यम से सब हासिल कर सकते हैं परन्तु शान्तिपूर्ण जीवन प्राप्त नहीं कर सकता।

पैसे की कीमती एवं सम्मान के कारण ही पूँजीपति गरीब लोगों का शोषण करने में आगे निकलता है। रजनी पनिकर के ‘बदलते रंग’ उपन्यास में लक्ष्मी आशा से कहती है - “यह पैसेवाले तुम्हारे दिल से खेलेंगे। राघवन तुम्हारे सौन्दर्य से घायल है। पर क्या वह तुम्हारे जीवन की निधि संभाल पायेगा।”<sup>18</sup> इस उपन्यास के विवेक ने पैसे के महत्व को सूचित करके बताया है कि “रुपये का अपना महत्व होता है। आज आपके भाईसाहब इंजीनियरिंग कॉलेज में नहीं पढ़ रहे होते।”<sup>19</sup>

ममता कालिया के ‘नरक-दर-नरक’ के नायक जगन ने अधिक कष्ट सहते हुए भी अन्त में नौकरी प्राप्त की। उसे बम्बई के कॉलेज में प्राध्यापक का पद मिल गया। एक गलती धारणा से प्रिन्सिपल ने उसे त्यागपत्र दिया। जगन एवं उषा के दाम्पत्य संबन्ध में नरक-दर-नरक आ गया। लेखिका ने यह बात बड़ी सच्चाई से व्यक्त की है कि “मध्यवर्गीय युवक धनाभाव के कारण जितनी अधिक कठिनाइयों से गुज़रता है उससे उसमें उतनी ही अधिक महत्वाकांक्षा जन्मती है और संतुलन न बैठा सकने के कारण वह हास की ओर उन्मुख हो जाता है। उसमें एक दर्शन फूट पडता है, जहाँ सत्यनाश वहाँ सवा सत्यनाश और जब अपने महौल में वह पक्षपात, भाई-भतीजावाद देखता है, उसे नतमस्तक होकर नहीं स्वीकारने से उसकी पीडा अधिक बढ़ जाती है।”<sup>20</sup> यहाँ स्पष्ट है कि आर्थिक पूँजी ही मानव-प्रतिष्ठा को नापने का मानदण्ड है।

धन की कामना से कहीं पवित्र प्रेम सम्बन्ध टूट जाता है। कृष्णा अग्निहोत्री के ‘टेसु की टहनियाँ’ में सुनीता से उसके प्रेमी के पिता कहते हैं, “बेबी इसकी शादी तो बम्बई में तय हो गयी है, ससुर कई मिलों का मालिक है, दहेज में दस लाख तो ‘पैसा’ ही हैं। जाओ भाग जाओ, और अपनी हैसियत के व्यक्ति को ढूँढो।”<sup>21</sup> पवित्र प्रेम के ऊपर भी पैसे का अधिकार है।

मानव भौतिक सुख साधनों को अपनाने की होड में मानवीय संबन्धों की भी उपेक्षा करता है। भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति का चकाचौंध फैल रहने के कारण केवल ‘अर्थ’

को ही महत्व दिया जाता है। दीप्ती खण्डेलवाल के 'कोहरे' उपन्यास में सिम्मी कहती है - "मैं हृदय के साथ बुद्धि भी रखती हूँ, यदि सर्वस्व दूँगी तो सर्वस्व चाहूँगी भी, अधिकार दूँगी तो अधिकार लूँगी भी.... चेतना के, जीवन के, स्वप्न और यथार्थ के, सारे संदर्भ ही नहीं अर्थ भी बदल चुके हैं।"<sup>22</sup> अर्थलालसा कहीं मानव के मन परिवर्तन का कारण बन जाती है।

धन संपादन के लिए मानव कई गलत तरीकों को अपनाते हैं। निरुपमा सेवती ने 'बँटता हुआ आदमी में' फिल्मी निर्माण के पीछे व्याप्त भ्रष्टाचार का खुला चित्रण किया है। प्रिंटिंग चेंकिंग के बाद ये लोग प्रिंट को विदेश जानेवाली सब्जी की लोरी में सब्जियों के बीच छिपाकर भेज देते हैं, इस काम में फिल्म के निर्माता तक शामिल होते हैं। शरद सोचता है - "वह कभी नहीं रहेगा। वे लोग गिर सकते हैं, जिसके पास संस्कार नहीं। कोई ठोस विचारधारा नहीं, एक भले घर का प्रगतिशील विचारोंवाला ग्रेजुएट भला कैसे गिर सकता है।"<sup>23</sup> फिल्मी संसार के क्षेत्र में भी धन लोलुप के सहारे किस तरह के भ्रष्टाचार चल रहे हैं, उसका सटीक अवतरण लेखिका ने किया है।

आज शिक्षा प्राप्त करने का प्रमुख उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना और रुपया कमाना है। 'नरक-दर-नरक' उपन्यास में नायक जोगेंदर साहनी से उषा पूछती है - "आपने अंग्रेज़ी एम.ए. क्यों किया? तो उसका उत्तर है कि - क्योंकि अंग्रेज़ी में अड़तालीस प्रतिशत नम्बर लाकर भी मुझे नौकरी मिल गई।"<sup>24</sup> इसका मतलब यह है कि आज अपने सोच के अनुसार नहीं, पैसे की खोज के लिए ही मानव पढ़ता है।

आज पैसे की धुन से आक्रान्त होकर जाते वक्त बच्चों का ख्याल रखने के लिए भी माता-पिता के पास समय नहीं है। उनके अनुसार 'पैसा' ही सर्वस्व है। ममता कालिया के 'प्रेम कहानी' उपन्यास में डॉ. गुप्ता के दो बेटे हैं जो होस्टल में रहकर पढ़ते हैं। पैसे के पीछे भाग रहे डॉ. गुप्ता अपने बच्चों पर कोई ध्यान नहीं देते। बच्चे गिनेस से इस बात की शिकायत करते हैं - "क्या फायदा इन पैसों का। रात ग्यारह बजे जब पापा क्लिनिक से उठते हैं - सारे सिनेमा हाऊस, रेक्तांश, बाज़ार बन्द हो जाते हैं। उस समय वह इतने थके होते हैं कि न ठीक से खाना खाते हैं, न बात करते हैं, बस सो जाते हैं। उनसे उस वक्त कहा भी नहीं जा सकता कि कहीं चलो। रात ग्यारह बजे किसी के घर नहीं जा सकते जब तक कि कोई फीस देकर ही न बुलाये।"<sup>25</sup> पारिवारिक उत्तरदायित्व से अधिक पैसे के लालच में पड़कर गुज़रनेवाले पिता का जीवित चित्र लेखिका ने यहाँ खींचा है।



डॉक्टर के लिए मानव सेवा ही माधव सेवा है किन्तु आज डॉ. गुप्ता जैसे लोग धन की कामना और कमाना ही मुख्य मानते हैं। डॉक्टर गुप्ता का फीस केवल बीस रुपए हैं लेकिन यदि रात में कोई आए तो वह उनसे पाँच सौ रुपए माँगता है। “डॉ. बिना चेहरे पर शिकन डाले चुपचाप मरीज देख लेते। उनका पर्स बार-बार नोटों से भर जाता। उनकी अलमारियों में एक के बजाय दो-दो सेफ थी।”<sup>26</sup> यहाँ अनियमित अर्थोपार्जन के लिए चिकित्सा के क्षेत्र में आए डॉक्टर के भ्रष्टाचार का ब्योरा मार्मिक है। शिक्षा के क्षेत्र में भी अर्थ-प्राप्ति की दौड़ में अपने कर्तव्य को भूलनेवाले अध्यापकों का प्रभावी चित्रण भी ममता जी ने किया है।

अर्थलालसा में डूबकर अपनी प्रेमिका को भी छोड़कर धनाढ्य युवती को प्राप्त करनेवाले भी हैं। शशिप्रभाशास्त्री के ‘प्रतिध्वनियाँ’ उपन्यास का नीलकान्त मेहता ऐसा व्यक्ति है जो रसायनशास्त्र में एम.एस.सी करते समय शुभ्रा से परिचित हुआ। लेकिन उसने अधिक धनाढ्य मेहता की बेटी अचला को ब्याह किया। नीलकान्त ने चाँदनी की तुलना में मेहता जी की सोने की रत्नजड़ित प्रतिमा को वरीयता दी। “उस स्वर्ण प्रतिमा की तुलना में मेरा चाँदनी जैसा भार कहाँ ठहर पाए”<sup>27</sup> ....जिसने प्रेमिका के अलावा ‘धन’ ही पूँजी मान लेकर अचला से शादी की आर्थिक आत्मनिर्भरता नारी को पीडित, शोषित करने से बचाती है। ‘ऐ लडकी’ में अम्मू आत्मनिर्भरता के साथ घर में आर्थिक भागीदारी पर ज़ोर देती है। वह कहती है - “मेरी बात सुनो। ना पूरा खर्च तुम किया करो और न उसे ही करने दिया करो। आधा-आधासमझी। नहीं तो यूँ ही हजमा कर ली जाओगी।”<sup>28</sup> पूँजी के प्रभाव से ही अम्मू एवं अपनी बेटी सामाजिक डर के बिना अकेली होकर अपनी ज़िन्दगी को आगे बढ़ाती हैं।

पूँजी के महत्व को ‘निष्कवच’ में राजीसेठ ने भी खींच लिया है। उपन्यास का नायक आर्थिक सुरक्षा हेतु अमेरिका चला गया। वहाँ उसे नौकरी भी न मिली और दोस्त उसे धोखा देकर चला गया। ‘मार्था’ नामक युवती से उसकी मुलाकात हुई। उसी युवती ने उसे आर्थिक लाभ दिया, लेकिन युवक को उसीका रखैल बनकर जीना पड़ा। यहाँ वसीम सोचता है - “मार्था तो न रिश्ता है और न ही साथ देनेवाली बाँह है। वसीम समझता है कि मियाँ-बीबी का रिश्ता तो अंदरूनी पुलों पर बनता है। वसीम से नुसरत को चुनने से यह लगता है कि सरहद के पार कोई एक भूखण्ड है। रास्ता आकाश को चीरकर जाता है। सात समंदर पार का फासला है। सबकुछ अनदेखा है। बेगाने लोग हैं। पैसा प्रमुख है।”<sup>29</sup> पैसे का महत्व यहाँ दृष्टव्य है।

‘वंशज’ उपन्यास में सुधीर दूसरों की मदद करनेवाला तथा स्वतंत्र विचारोंवाला व्यक्ति है लेकिन उसकी पत्नी सविता व्यवहार तथा हिसाब-किताब में चौकस, दकियानूस, कंजूस तथा प्रेम की तुलना में पैसों को महत्व देनेवाली पत्नी है। सुहागरात के समय सुधीर की उंगलियों में हीरे की अंगूठी न देखकर सविता ने झगडा शुरु किया। उसके अनुसार किसी को मदद करना पैसा लुटाना है। मृदुला जी ने सविता जैसी कंजूस औरत के चित्रण से केवल ‘पैसे’ को मूल्य देनेवाली महिला का मार्मिक चित्रण किया है।

### 3.1.2 पूँजीपतियों द्वारा शोषण

पूँजीपति एवं सामन्ती व्यवस्था का बोलबाला प्राचीनकाल से ही चलनेवाली व्यवस्था है। आर्थिक स्तरीकरण सामाजिक विकास के मार्ग पर बाधाएँ उपस्थित कर देता है। कॉलमाक्स गहन अध्ययन और अनुभव के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि संसार में दुःख का कारण आर्थिक शोषण है। “भूमण्डलीकरण के दौर में एक नया अपर मध्यवर्ग पैदा हुआ है, उसके ऊपर नव धार्मिक वर्ग है जिसने पूँजी की दौड़ में हैरत अंगज छलांग लगाई है। विकास वास्तव में इन्हीं का हुआ है।”<sup>30</sup> हमारे देश का दुर्भाग्य है कि पूँजीपति लोग श्रम का थोडा सा मूल्य चुका देते हैं और श्रम को खरीद भी लेते हैं। समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में पूँजीवादी व्यवस्था के आर्थिक शोषण का चित्रण किया है।

निरुपमासेवती ने अपने ‘दहकन के पार’ उपन्यास में फिल्मी संसार के श्रमिकों के उलझनों, जटिलताओं और संघर्ष का चित्रण किया है। इस उपन्यास का नायक शरदगुप्ता फिल्मी दुनिया की चकाचौंध की ओर आकृष्ट होकर धन कमाने की लालसा में ‘दीनू साहब’ का अस्मिस्टेंट बन जाता है। वह दिन-रात मेहनत कर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहता है। उसने अन्याय के प्रति विद्रोह करने के लिए घर छोडा था, किन्तु यहाँ परिस्थितियाँ निरन्तर उसका पीछा करती हुई उसे निरन्तर दौडाती रहती हैं। निरुपमा सेवती लिखती है - “दर असल अपनी सामन्ती बाप के खौफ और अत्याचार की परछाइयाँ उनका पीछा नहीं छोडती थीं। उनके दबे हुए व्यक्तित्व के छिपे हुए कारण समझ में आने लगे तो मेरा मन भी अपने अमीरदादा के घर के माहौल से या कहना चाहिए वैसे किसी भी वातावरण से विरक्त होने लगा। सामन्तवाद के शिकंजे से ज्यादा से ज्यादा दूर भागने के मेरे जोशीलापन ने, मेरी अतिरिक्त चिढ़ ने बहुत सताया।”<sup>31</sup>

उच्चवर्ग सभी समय निम्नवर्ग का शोषण कर रहे हैं। 'दहकन के पार' की नायिका तुषार पूँजीवादियों के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है - 'मुझे शोई - पार्टियों' में जाना कभी अच्छा नहीं लगता रहा। पता नहीं, शायद इसलिए ऐसा रहा हो कि मुझे हमेशा से चिढ़ रही उन बातों से जो पूँजीपतियों की शो-बाजी से जुड़ी होती है... और मुझे मध्यवर्ग से जुड़ी हुई बातें ही अच्छी लगती हैं।"<sup>32</sup>

'आवाँ' उपन्यास में लेखिका ने कामगार अधाडी, जागोरी श्रमजीवा लोकशाही आदि अनेक श्रमिक संगठनों का चित्रण किया है। उनके नेता एक तरफ मज़दूरों के लिए कई निर्णायक लड़ाई लड़ने में असमर्थ हैं। किन्तु वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए संगठन की क्षमता का उपयोग भी करते हैं। डॉ. राम विनयशर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है कि " 'आवाँ' मज़दूर संगठनों के घात-प्रतिघात, तानाशाही, अन्तर्विरोध एवं संगठन, नेताओं के चारित्रिक पतन, अवसरवादिता और दर्दनीय लालसाओं से उघाड़ता है।"<sup>33</sup> मज़दूरों के शोषण का दर्दनाक चित्र प्रकट करने में यह उपन्यास सक्षम है।

मृदुला गर्ग के 'मैं और मैं' उपन्यास का कौशल जो लेखिका माधवी का सहायक है तथा आर्थिक अभाव की कटुता से पीड़ित भी। शोषक-शोषित के अन्तर को देखकर कौशल तीखा व्यंग्य करता है - "रुपया हाथ का मैला है। जी हाँ, यह मैला सिर्फ बड़े आदमियों की हथेली पर जमाता है। हमें मिले जाए तो हम साबुन की तरह इसका इस्तेमाल करें।"<sup>34</sup> रुपया जीवन चक्र को बदलनेवाली सामग्री है। कौशल एक गरीब साहित्यकार है जो पूँजीपतियों का विरोधी है। वह माधवी से झूठीप्रशंसा करके पैसा चुराने में गर्व का अनुभव भी करता है - "कहने में मुझे शर्म नहीं है। उधार लिये हैं, चोरी नहीं की। आरामकुर्सियों में ज़मे आप जैसे परजीवी क्या जानेंगे, हम लोगों के घरों के हालात क्या होते हैं। आपके मुकाबले तो सूद पर रुपया उठानेवाला महाजन भी समाजसेवक है। मुसीबत के वक्त काम तो आता है। आपकी तरह जॉक वह भी है पर वह काम आकर खून चूसता है, आप काम लेकर चूसते हैं। रुपया लेकर मैं किसीका एहसानमंद नहीं हो जाता। जब होगा, ले जाकर उनके मूँह पर मार दूँगा कि लो अपना रुपया और डूब मरो कहीं जाकर।"<sup>35</sup> कौशल के बारे में लेखिका लिखती हैं - "कौशल का किया शोषण योजनाबद्ध है। इसमें अपराध-बोध या पश्चाताप नहीं है। वह खुद को पीड़ित, वंचित, शोषित समाज का शिकार मानता है। उसकी मान्यता है कि क्योंकि समाज ने उसका शोषण किया है इसलिए उसे अधिकार

है कि वह जिस किसी का, जैसे चाहे शोषण कर लें। दरअसल उसे अपने शोषण करने के तरीके पर गर्व है। वह हथियारों की तरह कौशल के साथ, उनका इस्तेमाल करता है। अपनी इस प्रतिभा का वह उतना ही कायल है जितना अपनी लेखकीय प्रतिभा का।”<sup>36</sup> स्पष्ट है कि पूँजीपतियों के शोषण से तंग आकर ही कौशल ने ऐसी राह चुन ली।

कृषक एवं निम्नवर्गीय मज़दूरों का शोषण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘इदन्नमम’ में भी देख सकते हैं। मन्दाकिनी ने सोनपुरा गाँव में लौट आते समय अभिलाख सिंह तथा ठेकेदारों द्वारा मज़दूरों के शोषण की समस्या जान ली। अभिलाख सिंह जो निरन्तर मज़दूरों का शोषण करता है, कभी-भी उनको इलाज के लिए पैसे नहीं देता है, भूखे मज़दूरों को शराब पिलाकर उनसे जी तोड़ मेहनत करवाता है, मारपीट करता, मज़दूरों की औरतों को बेचना उसका प्रमुख कार्य है। इन सबके विरोध में मन्दाकिनी खड़ी रहती है। संतप्त अभिलाख सिंह मन्दाकिनी को पूरी तरह पीट देता है, “अभिलाख ने आव देखा न ताव, लपककर मन्दाकिनी के बाल पकड़कर ऐंठ डाली और जहाँ हाथ गया वहाँ... ठौर देखा ना कुठौर दूर पड़ा भूखे भेड़िये की तरह।”<sup>37</sup> लेकिन इस आक्रमण के उपरान्त भी मन्दा ने अधिक शक्तिशाली बनकर उसके विरुद्ध विद्रोह चलाया। प्रसिद्ध समीक्षक प्रोफसर रोहिणी अग्रवाल ‘इदन्नमम’ को दलित समाज के पुनर्निर्माण का स्वप्न मानती है। “यहाँ मन्दा के रूप में कथा लेखिका के उस व्यक्तित्व का उद्घाटन है, जिसमें गाँधी की सर्वोदयी दृष्टि और लोहिया के समाजवाद की स्पष्ट छाप है।”<sup>38</sup> राजेन्द्रप्रसाद पाण्डे के अनुसार “मन्दा संकल्पबद्ध हो जाती है। अपना हक पाने के लिए न सही, ज़मीन पर अधिकार न सही, अपनी ज़मीन पर लगी फैक्टरियों में काम करने का तो अधिकार मिले। एक अल्पशिक्षित लड़की पूरे गाँव को संगठित कर ट्रैक्टर खरीदने का उपक्रम करती है। संगठन और परिश्रम के द्वारा वह शोषण के तन्त्र अभिलाख की सत्ता को चुनौती देती है। इतना ही नहीं मज़दूरों को जागृत कर, उन्हें उनके प्रति हो रहे अन्यायों का अहसास दिलाकर वह अभिलाख के कर्मों का फल भी उसे दिला देती है।”<sup>39</sup> यहाँ मज़दूरों को शोषण से बचानेवाली मन्दाकिनी के चित्रण से तत्कालीन सामन्ती एवं पूँजीपती व्यवस्था का पर्दाफाश किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने कृषक - मज़दूरों की जीवन स्थितियों को बहुत निकट से देखा है और उसे अपने उपन्यासों में प्रतिबिंबित भी किया है।

मृदुला गर्ग ने अपने ‘वंशज’ उपन्यास में भी पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों के आर्थिक शोषण का मार्मिक चित्र खींचा है। ‘वंशज’ में संवेदनशील सुधीर धनबाद और राजीगंज के झंझरा, कोयला

खान में नौकरी करता है, जो वहाँ के मज़दूरों की आर्थिक विवशता, दुर्दशा से असह्य होकर तिलमिला उठता है। कोयलखान के मज़दूरों का मार्मिक, सजीव रेखाचित्र शब्दों के माध्यम से खींचते हुए लेखिका कहती है - “कोयले की धूल और पसीने से काले भुजंग बने ये अधनंगे मज़दूर, इनका साथ तभी तो उसे इतना सुखदायी लगता है। कुदाल उठाए दुबले पतले पर तने हाथ, केंचुओं से सिहरती नीली नसें, इस दहशत भरी मेहनत के लिए ना काफी बाहों की कमज़ोर मांसपेशियाँ, अधगीले भात से आधे - भरे पेटों की सूखी-फड़कती आतड़ियाँ, कोयले की विषैली गैसों से आक्रान्त घर्-घर् करते खो-खो निकलती खांसी, बहुत कुछ गलत होने पर भी कुछ ठीक होने का एहसास क्योंकि कुदाले चल रही है, अनवरत चल रही है।”<sup>40</sup> सरकार द्वारा आर्थिक क्षेत्र में बहुत अधिक योजना बनाने पर भी अधिकतर लोगों की संख्या निर्धनता की रेखा के नीचे पर है। इन योजनाओं द्वारा निर्धन अधिक निर्धन एवं धनी अधिक धनी हो गए हैं।

कई लोग अंग्रेज़ों के अनैतिकपूर्ण शासन व पूँजीपतियों के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने का हिम्मत भी न रखते थे। ‘पीली आँधी’ में प्रभा खेतान ने बताया है कि - “राजा गंगासिंहजी ने कंपनी के खिलाफ एक शब्द नहीं बोलने देते, यहाँ तो कलकत्ते के व्यापारियों में अंग्रेज़ हुकूमत के खिलाफ बातें होने लगी हैं। कई लोग तो खुल्लम-खुल्ला सुराजियों का साथ देने लगे हैं।”<sup>41</sup> आज समाज की अर्थव्यवस्था भी पूँजीपतियों के अर्थ के आधार पर है। “आज समाज में सर्वत्र अव्यवस्था और अविश्वास, हिंसा और कलह, दुःख और दरिद्रता फैली हुई दिखलाई देती है। वर्तमान पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ही इस प्रकार की है, जिसके अंतर्गत आधुनिक समाज के दो प्रधान वर्गों - पूँजीपतियों और मज़दूरों का संघर्ष अनिवार्य हो जाता है।”<sup>42</sup> अर्थात् इस आर्थिक कुव्यवस्था का नियामक पूँजीपति ही है, जो हमेशा श्रमिकों का शोषण करने को व्यस्त है।

अर्थाभाव के कारण किसी सामन्तों के घर में काम करनेवाली स्त्रीयाँ भी हैं, जो अपने परिवार को भूखमरी से बचाने के लिए ही तनतोड़ मेहनत करती हैं। लेकिन वहाँ भी उन्हें अनेक दर्दपूर्ण घटनाओं का सामना करना पड़ता है। मंजुल भगत के ‘अनारो’ उपन्यास में अनारो किसी दूसरे के घर में बर्तन माँजकर ही भूख मिटाती है। एक दिन थोड़ी देरी से आने पर घरवाले गुस्से से उसे गालियाँ देते हैं - “टाइम देखा है, क्या हो रहा है? सारे घर निबटाकर मेरे घर आयी है? यह फालतू का काम है क्या? मुफ्त कराते हैं तुझसे?” इसपर अनारो इसप्रकार उत्तर देती है - “बस बीबिजी बस, कलाई पर घड़ी बँधी है हमारे? हो गयी देर, तो हो गयी। तुमने कह दिया और

उसने सुन ली और अब क्या फाँसी चढ़ाओगी हमें? और जी हमारे काम को तो नज़र लगाओ मत। तुम मुफ्त काम नहीं कराते? तो हम भी हराम की नहीं लेते, हाथ तोड़-तोड़ के कमाते हैं।”<sup>43</sup> कहने का आशय यह है कि पूँजपतियों के शोषण का शिकार पुरुष ही नहीं बालक से बूढ़े तक है।

### 3.1.3 गरीबी

निर्धनता की निशानी भूख या गरीबी का चित्र हमारी राष्ट्रीय एवं सामाजिक प्रगति एवं संस्कार के भाल पर कलंक का टीका है। ‘गरीबी हटाओ, भूख मिटाओ’ ऐसा नारा कई राजनीतिज्ञों के मुँह से निकल पडने पर भी भूख कैंसर की तरह समाज को चीरफाड़ कर रही है। डॉ. हेमेश कुमार पानेरी के अनुसार “गरीबों की स्थिति उसीप्रकार की है जैसे पहले थी। विभिन्न कानून बने, पर उनसे अमीरों का भी लाभ हुआ।”<sup>44</sup> बढ़ती हुई जनसंख्या, महंगाई, बेकारी, अशिक्षा, पूँजीवाद आदि अनेक कारणों से देश अब भी गरीबी व अकाल के चंगुल में पड़ रहा है। गरीबी का मार्मिक चित्रण कई महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में देख सकते हैं।

मृदुला गर्ग ने सामाजिक यथार्थ की पहचान की ओर इशारा देकर ‘चित्तकोब्रा’ उपन्यास में गरीबी में तड़पते व्यक्ति का चित्रण किया है - “अनजान राह के अज्ञान डर। गरीबी, बीमारी, भूख का घिनौना माहौल और कुछ न कर पाने का कचोटता अहसास। छिप-छिप कर जीना, कीचड़ में रेंगना, दल-दल में अटकर लेटे रहना, गंदगी में दुबककर सोना, जो हाथ लग जाये मुँह में डाल कर निगल लेना। सड़ा भात, जंगलीफल, पेड की छाल या जड़। गलीज़ सिर और बदन में जुएँ पालकर उतने ही गलीज़ मरीज़ों की असमर्थ सेवा करना। सूनी लाचार आँखों में भूखे फूले पर मायूस बच्चों को दम तोड़ते देखना।”<sup>45</sup> यहाँ मृदुला जी ने लाचार एवं गरीब मानव की परिस्थिति पर प्रकाश डाला है। सामाजिक स्तर पर भेदभाव बिने सबको समानाधिकार की बातें शासक वर्ग देते हैं लेकिन असलियत कुछ और है। इस संदर्भ में स्नेहमोहनीश लिखती हैं - “समाजवाद की हम बातें करते रहें, पर हमारे नेताओं में उसकी परिभाषा को लेकर ही रस्साकसी होती रही है। हरेक दल अपनी सुविधा के अनुसार उसकी परिभाषा गढ़ता रहा। उनकी सोच में... जनता की सोच में खाई बढ़ती रहती है।”<sup>46</sup> समाज की असलियत का दृश्य गली-गली में देख सकेगा।

गरीबी मिटाने के लिए आज लोग चोरी, लूट-पाट, हत्या या देहव्यापार आदि अनेक अत्याचार व अनैतिक काम भी कर रहे हैं। कुसुमअंसल के 'तापसी' उपन्यास में वृन्दा अपनी बेटी की भूख मिटाने के लिए मन्दिर की वस्तुएँ चुरा लेती थी क्योंकि उसके लिए पूजा-भाव इत्यादि पेट भरने के साधन मात्र थे। तापसी वृन्दा की इस स्थिति को देखकर सोचती है कि "वृन्दा चोरी किए फल, मिठाई थैले में छिपाए चुपचाप आ रही थी, उसके भीतर उसकी बीमार बेटी का अस्तित्व खुदा हुआ था जैसे, जिसे वह कभी अपने से अलग नहीं कर पाती थी। उसके लिए सब भाव एक ही स्थान से आरंभ होकर एक ही स्थान पर समाप्त होते थे। उसका ध्येय केवल उसकी बेटी चुनिया, बीमार, टेढ़ी हो आई टाँगों से घिसटती"<sup>47</sup> भूख मिटाना मनुष्य की आवश्यकताओं में प्रथम है जो किसी-न-किसी तरह करने में आदमी अग्रसर होते हैं।

नासिरा शर्मा के 'अपनी जंजीरा' में भूख मिटाने को रोटियों की चोरी की बूढ़ी औरत और रोटी की कीमत देकर दूकानदार से उसे बचायी समीरा का चित्रण दर्दनाक है। बूढ़ी औरत की आँखों से गिर रही बेतहाशा आँसु की लडियाँ उसके घुटन का दस्तावेज है। उसी प्रकार शशिप्रभा शास्त्री के 'क्योंकि' उपन्यास में चोरी करनेवाले नौकर का चित्रण है। यदि आमदनी कम एवं व्यय अधिक हो तो चोरी करने में उतावला होती है। यह नौकर राशन, सब्जी लाते समय कुछ पैसे वहाँ से निकाल देता है। जब उसकी चोरी पकड़ी तो उसकी प्रतिक्रिया के रूप में एक सत्य बाहर आता है - "क्या कबूल ले बाबूजी आप हमें कितनी तनख्वाह देते हैं, सिर्फ पच्चीस रुपये न?"<sup>48</sup> भूख की तीव्रता से ही रोटी, या अन्य वस्तुओं की चोरी करनेवाले लोग भी यहाँ रहते हैं।

आर्थिक असुरक्षा के कारण अपनी प्यास बुझाने के लिए मानव को दूसरों की प्यास बुझानी पड़ती है। 'कोरजा' उपन्यास में साजो खाला को यही दशा है। यहाँ मेहरुन्निसा परवेज़ लिखती हैं - "जब उसके घर से दोनों निकले तब तक एक-एक पैर सौ-सौ मन का लग रहा था... इतनी बड़ी बात? आखिर जुम्न की हिम्मत कैसे हुई? कहता है घर में रहने का किराया नहीं लूँगा अगर रोज रात को साजो खाला जायेगी तब।"<sup>49</sup> मुस्लिम परिवार का दर्दनाक चित्रण यहाँ देख सकते हैं। घर की गरीबी शान्त करने के लिए साजो खाला किरायेदार को अपने तन की बली देती है। यहाँ लेखिका ने गरीबी का दृश्य निकट से भी देखा एवं अनुभव किया है। उनकी मान्यता है कि पैसे के आगे मनुष्य का आदर्श तुच्छ है। पेट की भूख के आगे मनुष्य निराश्रित है। कोरजा में वे लिखती हैं - "नानी तो अपना वहीं पीढ़ा खींचकर बैठ जातीं और दो चार निवाले नीचे उतार

तुरन्त उठ जाती थी, उनका कहना था, जीने के लिए आधा पेट खाना खा लेना ज़रूरी है, बस नसीमा ने कभी उन्हें भर पेट खाना खाते नहीं देखा, चाहे कितनी बढ़िया तरकारी क्यों न पकी हो।<sup>50</sup> यहाँ संयुक्त परिवार में गरीबी से त्रस्त लोगों का चित्रण मेहरुत्रिसा परवेज़ ने खींच लिया है।

‘नीलोफर’ उपन्यास में जुग्गी की आर्थिक स्थिति बहुत दर्दनाक थी। वह भूखी होकर जी रहा था। जुग्गी झुका और उसने दो घूँट पानी ढलाब से पिया और बोला “हमारा जल भगवान ही बहुत अच्छा है। इसे पीकर ही एक-दो दिन भूखे जिया तो जा सकता है।”<sup>51</sup>

आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न गरीबी का चित्रण मंजुल भगत के ‘अनारो’ में देख सकते हैं। अनारो दूसरे घर में नौकरी करके अपने घर का संचालन करती है। रोटी बनाने के लिए आटा उधार लाते देख छः साल का छोटू कहता है - “जे का है अम्मा? मैं तो नई खाता इसे? जाने का गोबर सा पाथ दिया तूने तो। अरे मरो, खिचडी है खिचडी। दाल भात की बने है कि नहीं, वैसे ही आटे-भाजी की बना ली। मैं ने देखी जो है बनती हुई काम पे नित नवी चीज़ देख लो। तुमने अभी देखा ही क्या है? बस यही मदनगीर को मोहल्ला न? ले उतार ले गले के नीचे। पेट में आग लगी तो लोग घास-पात भी नहीं छोड़ते, यह तो फिर भी अन्न है।”<sup>52</sup> गरीबी का असली चित्रण यहाँ देख सकते हैं।

आज गरीबी के कारण छोटे-छोटे बच्चे भी शिक्षा को छोड़कर मज़दूरी करते हैं और होटल की जूठी रोटियाँ खाते हैं। ‘अकेला पलाश’ में इसका चित्रण है - “एक आठ-दस बरस का लड़का एक कोने में बैठा जूठे बर्तन बड़ी तेज़ी से माँज रहा था... बीच-बीच में आँख बचाकर वह जूठी रोटियों के टुकड़े... जूठी दाल तरकारी मुँह में डाल लेता था और बिना मुँह हिलाये निगलता सा लगता था। कुत्ते की तरह प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल गया था।”<sup>53</sup> भूख की परेशानी से किसी भी चीज़ खा लेने में निम्नवर्ग सचेत होता है। ग्रामीण जीवन की असली ज़िन्दगी देखकर तहमीना स्तब्ध हो जाती है। “तहमीना उस दिन खुद अपनी आँखों से देखा था, गाँव की कुछ औरतें चावल के कोढ़े को, जिसे गाय-भैंसों को खिलाया जाता है, बारीक छानकर, उससे मोटी-मोटी रोटी बना रही थीं, उसे देखकर आश्चर्य लगा था कि कोढ़े की रोटी कैसे खाई जा सकती है? क्या इन्सान अब गाय-भैंसों की श्रेणी में आ गया है? सच है, पेट की आग बुझाने के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता।”<sup>54</sup> भूख एवं गरीबी की आग में जल रहे निम्नवर्ग का दर्दभरा चित्रण लेखिका ने यहाँ किया है।



निम्नवर्गीय लोग कभी-भी गरीबी की चक्कर से न निकल पाते हैं। यदि देखभाल के लिए पिता भी न हो तो उनकी दशा क्या होगी। 'मोम की मोती' में राजन सेठ धनपति की अवैध सन्तान है। राजन माया से परिचित होने पर अपनी ज़िन्दगी की व्यथा उसे समझाता है - "मेरा जन्म उस समय हुआ था, जब मेरी माँ के पास आठ आने के पैसे भी न थे कि वह गॉड मँगवाकर खा ले। कोई पड़ोस की स्त्री भी पास नहीं आई कि उसे मदद कर देने पर थोड़े-से रुपए भी देने पड़ जाँगे। बच्चे के लिए दो घूँट दूध देना पड़ेगा।"<sup>55</sup> निम्नवर्गीय स्त्रियाँ यदि यौन शोषण की शिकार बनीं तो उनकी और उनकी अवैध सन्तान की यातना असहनीय है।

### 3.1.4 बेरोज़गारी

बेकारी की समस्या एक विकराल आर्थिक समस्या है। काम की कमी एवं काम करनेवालों की अधिकता से भारत में बेकारों की संख्या अधिक बढ़ रही है। भूख मिटाने की कोशिश में कोई अनैतिक एवं अत्याचार करने को भी युवा पीढ़ी न हिचकती है। बढ़ती हुई बेरोज़गारी के कारण युवा मन में कुंठा, संत्रास आदि भाव उत्पन्न होते हैं और वे घर तथा बाहर में उपेक्षित, अपमानित एवं हारे हुए का अनुभव करते हैं। महिला उपन्यासकारों के कई उपन्यासों में अधिकतर शिक्षित बेकारों का वर्णन है।

'अकेला पलाश' उपन्यास का विपुल शिक्षित युवक है लेकिन बेकार भी है। वह निराश होकर तहमीना से कहता है कि "आजकल नौकरी मिलना इतना आसान है क्या दीदी?... मेरा फस्ट आना, एन.सी.सी में टॉप लेना, खेलकूद में बढ़िया सर्टिफिकेट पाना सब बेकार हुआ। लेकिन इतनी बात तो समझ में आ गयी कि आदमी के पास कोई सर्टिफिकेट न हो, तो चलेगा, फिर सिफारिश का उत्तम सर्टिफिकेट होना ज़रूरी है। माँ बचपन से हमारे पीछे लगती थी, बेटा अच्छा पढो, अच्छा खेलो, बढ़िया हेल्थ बनाओ पर क्या फायदा हुआ। सारा कुछ तो माँ ने हमारे लिए जुटा दिया पर हमारे लिए सिफारिश नहीं जुटा पायी। माँ के कितने गहने इंटर्व्यू देने के चक्कर में बिक चुके हैं।"<sup>56</sup> हताश एवं बेकार नवयुवक की विडम्बनात्मक स्थिति यहाँ स्पष्ट होती है। हमारे समाज के अधिकांश शिक्षित बेकारों की स्थिति यही है। निराशा से उत्पन्न विद्रोह बेकारों को विद्रोही बना लेता है। बेकारों की 'लाचारी' पार्टी के संदर्भ में लेखिका लिखती है - "हम लोग बेकार पार्टी के हैं। किराये पर कोई भी पार्टी ले जाकर तालियाँ बजाना लेती है या काले झंडे उठवा

लेती है तो यह लोग समझते हैं कि पार्टियाँ हमारे लिए कुछ करेंगी।”<sup>57</sup> बेकारों के लिए व्यर्थ व स्वार्थ भरे नेताओं के प्रति व्यंग्यभरी वाणी यहाँ मुखरित होती है।

बेकारी के दोषों को समझते हुए माता-पिता अपनी सन्तानों को उच्च शिक्षा देकर नौकरी प्राप्त करने का उतावला देते हैं। आज बेकार नर-नारी एक जैसा परेशान है, उनके माँ-बाप भी बेहद परेशान हैं। दाम्पत्य जीवन में बेटी की सुरक्षा को दृष्टिपात करते हुए ‘शाल्मली’ के पिता कहते हैं, “मैं चाहता हूँ कि मेरी बेटी ससुराल में जाकर भी राज करे, अपने पैरों पर खड़ी हो जाए। किसी पत्नी के अतिरिक्त भी उसकी अपनी एक पहचान बन जाए।”<sup>58</sup> संतानें शिक्षित होकर उच्चपदस्थ प्राप्त करने की जो तीव्र इच्छा माँ-बाप में भरी रही है वह यहाँ उकेरी गयी है।

आज का नवयुवक बेकार होने के कारण बहुत हताश एवं अशान्त भी हैं। ये तनाव भरे बेकार लोग ज़िन्दगी के कट्टरेपन से विदा लेकर आत्महत्या का उपाय भी चुन लेने को उद्यत होते हैं। कुसुम अंसल के ‘उसकी पंचवटी’ में ऐसे युवक का चित्र मिलता है - “दरवाज़ों के पास भीड़ में ही पान खाए एक हीरो-सा लगनेवाला लड़का खड़ा था, वह शोर बढ़ता देख घबराकर चलती बस से कूद गया, पर भाग नहीं सका बस के पिछले पहिए के नीचे कुचल गया। बहुत-सी चीखों के साथ बस रुक गई और फिर जैसे गहरा सन्नाटा पूरी बस पर छा गया।”<sup>59</sup> आर्थिक असुरक्षा आज युवकों का जीवन बाजी में लेती है।

आर्थिक परेशानी से चोरी का रास्ता चुननेवाले लोग भी हमारे समाज में हैं। ‘मैं और मैं’ उपन्यास में माधवी लेखिका एवं उच्चवर्ग की प्रतिनिधि है। बेकार कैलाश माधवी की साहित्य संपन्नता को लूटकर अपनी स्वार्थता की पूर्ती करने लगा। माधवी के मन में कैलाश के प्रति कोई बुराईपन न महसूस हुआ। लेकिन कैलाश ने मनमोहक बातों से उसे अपने चंगुल में फँसाकर आर्थिक लाभ उठाने की कोशिश की।

चित्रा मुद्गल के ‘आवाँ’ की कथा बेरोज़गारी के भटकाव से शुरु होती है और एक लाचार लड़की के अस्मत के सौदे पर पहुँच कर समाप्त हो जाती है। यह उपन्यास बेरोज़गारी की हालत में पड़कर ज़िन्दगी कायम रहने के लिए विवश नमिता चौधरी की कहानी है। इस लड़की की बेरोज़गारी की विवशता के अर्थशास्त्र की परिभाषा उसे नौकरी पर रखनेवाली मेडम इसप्रकार कहती है - “पैसे की ताकत मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है। पैसे की ताकत से एक बुद्धिहीन,

अपाहिज, असमर्थ व्यक्ति बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद कर बड़ी आसानी से अपने हितों के लिए उसका उपयोग कर, समाज और संसार का सर्वाधिक समर्थ व्यक्ति बन सकता है। लोगों पर शासन करने के लिए नोट की शक्ति पहचानो।”<sup>60</sup> बेरोज़गारी की समस्या ने एक बेचारी लड़की का जीवन भी बर्बाद किया।

अधिकांश बेकार लोग कम वेतन मिलने पर भी विदेश में जाकर काम कर रहे हैं। क्योंकि यहाँ केवल सिफारिश या रिश्तत है तो काम मिलेगा। इस संदर्भ में ‘नावें’ की लेखिका शशिप्रभा शास्त्री लिखती है - “यहाँ दिल्ली जैसे इतने बड़े शहर में आप समझती है, नौकरी आसानी से मिल जायेगी, यहाँ बहुत से कॉलेज हैं, पढनेवालों की कमी नहीं, पर कुछ भाग्य का खेल है। रिश्तत और सिफारिश से कुछ हो सकता है, अगर आप जुटा पायें तो।”<sup>61</sup>

बेकारी की भीषण स्थितियों को पार करनेवाली अंकिता का चित्र ‘एक ज़मीन अपनी’ में उपलब्ध है। अंकिता शिक्षित बेकार युवती है। आर्थिक रूप से शक्ति पा लेने पर भी नयी दुनिया की त्रासदी को झेल नहीं पाने से विवश होकर आत्महत्या की राह चुन लेती है। उसने सोच लिया कि क्या उसे कभी अच्छी और पक्की नौकरी नहीं मिल पायेगी? कब तक बतोर फ्रीलान्सर गुज़ारा करती रहेगी? गुज़ारा जो हो नहीं पाता करना पड़ता है। अपने खुलेपन का इजहार करती हुई नीता उससे कहती है - “नौकरी और प्रतिभा दो अलग-अलग चीज़ें हैं। कभी-कभी वे दोनों एक साथ, एक मंच पर होने का अवसर और सम्मान देते हैं, लेकिन अवसर नहीं। ....वे खरीदार हैं, उन्हें मालूम है वे जो चाहे, जैसी चाहे बुद्धि और प्रतिभा खरीद सकते हैं। वह ग्लैमर की दुनिया है अंकू। यहाँ जीने, जी पाने की पहली शर्त है विशिष्ट दिखना....”<sup>62</sup> अर्थव्यवस्था का विज्ञापन अपने आप में सबसे बड़ा यथार्थ है। अंकिता इस दुनिया की अश्लीलता एवं स्वार्थता पर निन्दा करनेवाली है इसलिए वह आर्थिक दृष्टि में कमज़ोर हो गयी लेकिन नीता ने समाज की यथार्थता को समझकर उसके अनुसार काम की तलाश की।

बेरोज़गारी की जड़ें इतनी रूढ़ग्रस्त बन गयी हैं कि कहीं शिक्षित बेकार छोटे से छोटे काम करने के लिए भी त्रस्त हो जाते हैं। इस संबन्ध में ‘फ्रीलान्सर’ में शुभा वर्मा नौकरी पेशा दो सहेलियों के वार्तालाप के माध्यम से लिखा है - “तू ने अपनी पटरी कैसे बिठाई है, इसके साथ?” बताना क्या है? इसकी बातों में हिस्सा लेती हूँ, उससे बराबर के दर्जे पर हाथ मिलाती हूँ। इसकी बकवास सुन लेती हूँ। इस पर रोब जमाने के लिए कभी बकवास भी करती हूँ पटरी और कैसे

बैठती है? ”<sup>63</sup> दुःख की बात यह है कि विकराल आर्थिक अभाव में पड़कर यद्यपि इसने किसी भी नौकरी को स्वीकार किया तो भी पदस्थ कर्मचारियों की बदतमीज़ी से उसे नौकरी छोड़नी ही पड़ी।

बेरोज़गारी एवं उससे उत्पन्न भूख एक विकराल सामाजिक समस्या बनकर हमारे सामने खड़ी रहती है। भूखे-नंगे छोटे बालक भी अपनी पढ़ाई छोड़कर किसी न किसी काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। छोटी आयु में ही मज़दूरी मनुष्य को ज़्यादा चालाक और होशियार बना लेती है। ‘क्योंकि’ उपन्यास में शशिप्रभा शास्त्री लिखती है - “अरे इन बेचारे लडकों की ज़िन्दगी भी क्या है? मूँह अंधेरे में, जो अखबारों की गड्डी लेकर दौड़ते हैं तो दौड़ते ही रहते हैं, देर हो जाय तो लोग चीखते हैं - हमें अखबार टाइम से नहीं मिला।”<sup>64</sup> गालियाँ सुनने पर भी अपनी हैसियत समझकर ये बालक काम कर रहे हैं।

मशीनीकरण व यंत्रीकरण की अधिकता बेरोज़गारी बढ़ाने का कारण बन गयी। यंत्रीकरण का विकास होते ही बेकारों की संख्या में वृद्धि हुई है। मृदुला जी ने ‘चित्तकोबरा’ में यंत्रीकरण के प्रभाव के बारे में रिचार्ड के द्वारा कहलवाया है “पूँजीवाद और यंत्रीकरण की भयावहता कल्पनातीत है। जितनी बार वह ज़मीन पर गिरता है, उसकी शक्ति बढ़ती जाती है। उसके पंजों की जकड़ विचित्र है। उसका कैदी छटपटाता ज़रूर है। पर उसकी पकड़ से बाहर निकलने के बजाय खुद की ओर शिद्दत के साथ उसके पंजों के हवाले करता जाता है। जब वह खुद यंत्र और यंत्रीकृत पूँजीवाद के राक्षसी बदन का हिस्सा बनता जायेगा तो विद्रोह भला कैसे करेगा? युग बीत जायेंगे, छोटे-मोटे विरोध होंगे, राक्षस पटकनी खाएगा तो दूनी शक्ति के साथ उठ खड़ा होगा, विद्रोह टलता रहेगा, शोषण बढ़ता रहेगा, समता आ नहीं पायेगी।”<sup>65</sup> मृदुला गर्ग के ‘कठगुलाब’ में स्मिता देश एवं विदेश में भी इसके प्रति संघर्ष करती है। बेरोज़गारी की समस्या जिस प्रकार भारत में है उसीप्रकार ‘पूँजीवाद’ के नियामक अमेरिका में भी हैं। जिसप्रकार भारत में स्मिता इस समस्या का शिकार बनती है उसीप्रकार अमेरिका में मरियान भी। यह तो पढी-लिखी निम्न एवं मध्यवर्ग की समस्या है। उसे अपने और अपने भाई को जीवित रहने के लिए किन-किन संघर्षों से गुज़रना पडता है जो उसी के शब्दों में - “तभी कमर पर ज़ोर का दुहल्यर पड़ा। हराम की औलाद। लग काम पे। सोने के पैसे नहीं मिलते, हरामी काम चोर... बस हो गया मेरा बचपन खतम।”<sup>66</sup> बेकार मनुष्य ज़िन्दगी की झंझट में पड़कर चकनाचूर बन जाता है।

बेरोज़गार स्थिति का निन्दनीय चित्रण 'रंगशाला' उपन्यास में भी है। श्यामल न्यूयॉर्क में काम कर रहा था। लेकिन माता-पिता की इच्छा एवं राधिका की इच्छा पर ज़ोर देकर वहाँ की नौकरी छोड़कर दिल्ली पहुँचा। पिता ने जब उनके लिए फैक्ट्री खोली लेकिन वहाँ का संचालन ठीक तरीके से न होने पर उन्होंने क्रुद्ध होकर बताया - "प्रतापपुर में जो फैक्ट्री खोली थी उसमें साझेदारी थी, पर चल नहीं पायी क्योंकि श्यामल जो वहाँ की कुर्सी पर बैठे हुए थे।"<sup>67</sup> न्यूयॉर्क से इंजीनियर का काम छोड़कर ही वह भारत लौट आया लेकिन यहाँ पहुँचकर उन्हें निन्दापूर्ण व्यवहार ही प्राप्त हुआ।

'पीली आँधी' में पन्नालाल सगुणा शिक्षित, विवाहित किन्तु बेकार व्यक्ति है। अपने जीवन की निष्क्रियता की ओर सोच-विचार करके उसने मन में कहा - "नौकरी मिलेगी? बिल्कुल मिल जाएगी। 'आह फिर वही कचोट। हृदय के भीतर चुभते हुए झरबेरी के काँटे... क्यों पढ़ाई की मैं ने? किसलिए! बस केवल बही खाता, लिखते-लिखते लिखने के लिए? दो पीढ़ी तो बही खाता लिखते-लिखते सेठों की हंडी संभालते हुए, ब्याज उगाते हुए चल बसो। क्या मेरी थी वही नियति होगी? वही गद्दी, सामने वही खाते पर लिखते हुए झुकी हुई कमरेवाले मुनीम जी। बगल में बैठा हुआ रोकड़िया और उसके पीछे रखी हुई भारी तिजूरी"<sup>68</sup> यहाँ शिक्षित किन्तु बेकार व्यक्ति के मानसिक उत्पीड़न का चित्र लेखिका ने खींच लिया है।

'नरक-दर-नरक' के नायक जगन को अंग्रेज़ी में एम.ए करने के बाद भी नौकरी नहीं मिलती तो वह तनाव में रहने लगा। अर्थाभाव और बेकारी के कारण उसकी पहली प्रेमिका किरण बजाज दूसरे लडके से शादी कर लेती है। बेरोज़गारी की समस्या पर गहरा चिन्तन करके शशिप्रभा शास्त्री ने 'मीनारें' उपन्यास में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - "पार्टियों के मोहरे न बनकर अगर आज के विद्यार्थी संगठित होकर अपनी शिक्षा की गतिविधि शिक्षित छात्रों की बेरोज़गारी के विरुद्ध अभियान आन्दोलन करें तो बहुत कुछ हो सकता है।"<sup>69</sup> बेकार लोगों को मानसिक पीड़ा, एवं वितृष्णा से दूर कराने के लिए ऐसा उपाय उचित होगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वर्तमान बेरोज़गारियों के आर्थिक यथार्थ से महिला लेखिकाएँ प्रभावित हुई हैं और अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने अपने आर्थिक विचारों को भी व्यक्त किया है। आज 'अर्थ' के लिए कितने दाँव-पेंच लगाने पड़ते हैं। सीधे-साधे मनुष्य को

तो संपूर्ण जीवन इसकी प्राप्ति में समर्पित करना पड़ता है, किन्तु समस्या दिन-ब-दिन विकरलता की ओर जा रही है। इन विसंगतियों के प्रति महिला लेखिकाएँ सजग हैं।

### 3.1.5 आर्थिक अभाव से उत्पन्न पारिवारिक घुटन और रिस्ती संवेदनाएँ

मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे सुख-सुविधाओं से जीने का अधिकार भी प्राप्त है। आज पारिवारिक रिश्ते की मज़बूत अर्थ की मात्रा पर निर्भर है। सभी संबन्धों को आज अर्थ की तराजू पर तोला-परखा जाता है। उसके आगे धर्म, जाति, नैतिकता, मर्यादा सब फीके पड रहे हैं। आज मनुष्य उपेक्षित, अपमानित एवं हारी हुई ज़िन्दगी से व्यस्त होने का प्रमुख कारण अर्थाभाव है।

प्राचीनकाल से ही अर्थ का निर्माण एवं उपभोग परिवार में ही होता था। “विशेष रूप से सदस्यों के बीच श्रमविभाजन करना और जीविकोपार्जन के साधनों को निश्चित करना परिवार का दायित्व था लेकिन व्यक्तिवादिता, निहित स्वार्थ और निजी संपत्ती की भावना के कारण आर्थिक क्रियाओं का चुनाव, उसके लाभ अथवा हानि का दायित्व अब व्यक्तित्व आधार पर ही निर्धारित होता है।”<sup>70</sup> आज व्यक्ति पर पैसे की सत्ता है। मान-सम्मान, इज्जत-शोहरत सब कुछ पैसे के बल पर मिलने लगे हैं। इसलिए आर्थिक अभाव से तडपते मानव परिवार में भी घुटन का अनुभव करते हैं।

पारिवारिक घुटन का प्रमुख कारण है दहेज, जो विवाह के समय दूल्हे को दिये जानेवाले धन-दौलत है। दहेज देने में असमर्थ माँ-बाप हमेशा चिनगारी के समान ज्वलन्त होते रहते हैं। दहेज के विषय में शशिप्रभा शास्त्री जी ‘क्योंकि’ में लिखती है “श्यामा सुन्दर नहीं है और विवाह तय होता, तब जेवरों व पैसों की माँग होती है।”<sup>71</sup> यहाँ शशिप्रभा जी का रोष इस प्रकार है, - “इस देश के तमाम युवक नपुंसक हो गये हैं, इनकी शादियों की बात चलती है, ये ऑटे के बबुए बने रहते हैं, इन्हें शर्म नहीं आती कि उनके माँ-बाप, उनके सौदे करते हैं और ये भेड़-बकरियों की तरह अपने सौदे करते रहते देते हैं।”<sup>72</sup> ये लोग लड़की से भी ज़्यादा उसके घर से मिलनेवाले धन-दौलत के बारे में सोचते हैं।

दहेज की माँग केवल शादी में ही नहीं बल्कि शादी के बाद भी कम नहीं होती। जो बहू जितना अधिक धन लाती है उसे परिवार में अधिक प्रतिष्ठा मिलती है। शशिप्रभा शास्त्री ने

‘क्योंकि’ उपन्यास में श्यामा के ज़रिए इस सत्य को यों चित्रित किया है - “मुझे लगता है कि, ये पूरे रिश्ते स्वार्थ से बन्धे हैं। हर किसी को कुछ-न-कुछ चाहिए रहता है, वह माँग पूरी नहीं हुई तो बस मुँह फूलकर कुप्पा। कैसे बताऊँ ब्याह से पहले सास- जिठानी की कितनी बड़ी-बड़ी माँगें थीं। माँ ने किन-किन मुश्किलों से पूरा किया, फिर भी लोगों के मिज़ाज नहीं मिलते हैं। मैं सबसे छोटी हूँ, पर हमेशा दूसरी बड़ी बहुओं से तुलना की है - फलानी बहु इतना लायी थी, दूसरे नम्बर की उतना।”<sup>73</sup> आज कन्या की श्रेष्ठता दहेज में तौली जाती है।

सिम्मीहर्षिता के ‘यातना शिबिर’ उपन्यास में दिशा को दहेज कम देने के कारण अनेक पीडाएँ सहनी पड़ती हैं। दिशा द्वारा लाई गयी सामग्री को तुच्छ मानकर ससुर कहता है कि - “कौन सी सोने को लेकर आई हो जो उसके लिए रो-धो रही हो? यह याद रखना कि इस घर की लारा का महत्व तुम से अधिक है। यह घर एक कुतिया का हो सकता है - पर तेरा नहीं।”<sup>74</sup> दहेज की कमी के कारण ही दिशा को ऐसा अत्याचार सहना पडा है। ‘पतझड की आवाज़ें’ उपन्यास में निरुपमासेवती ने दहेज की कुप्रथा को यों प्रकट किया है कि - “हाँ, यूँ तो नम्बर दो का एकाउन्ट रखना भी जायज नहीं। पर फिर भी दुनिया में चलता है। वह सब तो... दहेज भी वहाँ कापती और उस नम्बर दो के एकाउन्ट की तरह चलेगा ही। आखिर तो इन्सान के दिमाग से समाज चलता है.... मशीन से नहीं... देवपुरुषों से नहीं।”<sup>75</sup> शादी के बाद भी दहेज रक्तबीज के समान मानव को दानव बनाकर लड़कियों के दाम्पत्य जीवन को मार खाता है।

अर्थाभाव के कारण अनेक लड़कियों की शादी ठीक समय करने में माँ-बाप असमर्थ होते हैं। मृदुला गर्ग के ‘कठगुलाब’ में स्मिता की शादी भी ऐसी थी। माता-पिता मर चुकने पर जीजी नमिता को स्मिता का उत्तरदायित्व संभालना पड़ा। लेकिन नमिता के पति पैसा बचाने के लिए अधेड, बद्सूरत आदमी से स्मिता की शादी करवाना चाहते हैं। “माल बचाने के लिए जी जानने का खर्च कुछ ज़्यादा ही करना पड़ता है सो जीजाजी कर रहे थे। स्मिता के जी-जान की यों भी कोई कीमत नहीं थी, उनकी नज़रों में।”<sup>76</sup> ‘अर्थ’ की कीमत लड़की के वैवाहिक जीवन में काँटे की तरह चुभनेलायक सामग्री है।

कहीं आर्थिक स्थिति के कारण परिवार सीमित रखा जाता है तो कहीं-कहीं जायदाद के लिए वारिस मिल जाए इसलिए भी लोग तड़पते हैं और जायदाद को वसूल करने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र भी रचते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘अगनपारवी’ में भुवन की शादी कुँवर विजय

सिंह से हुई। उनके भाई अजय सिंह ने षड्यंत्र के ज़रिए विजयसिंह को मारकर जायदाद हड़प करने की योजना बनायी। 'अभिषेक' में ही सुधीर जायदाद के लिए अपनी पत्नी को सौदा करने में कोई संकोच नहीं करता। वह कहता है - "ये जायदाद करोड़ों की है। यदि एक वारिस हमें मिल जाता है तो बारह समझो। इस के बाद तुम खुशी से जितना चाहो ले लेना, वैसे फिफ्टी-फिफ्टी ठीक रहेगा।"<sup>77</sup> अर्थप्राप्ति के लिए किसी प्रकार की कुरीतियाँ करने में भी स्वार्थी मानव कोशिश करेगा। यहाँ पति-पत्नी की घुटनभरी ज़िन्दगी व रिस्ती संवेदनाएँ मार्मिक है।

अर्थ प्राप्ति के लिए अनेक युवा लोग कामकाजी नारी से शादी करना चाहते हैं। 'शाल्मली' उपन्यास का नरेश अपनी पत्नी शाल्मली को केवल पैसे कमाने का साधन मानता है। शाल्मली की ज़िन्दगी एक मशीन की तरह बन जाती है। "परिवर्तन का पहिया विभिन्न स्वरों की गूँज से भरा, उसी गोलाई में घूमता रहा और शाल्मली घड़ी की सुई के टिक-टिक के साथ अपने को बाँध भोर से संध्या तक मशीन बनी काम करती और थक कर घर लौटती।"<sup>78</sup> 'अकेला पलाश' की 'तहमीना' 'ठीकरे की मंगनी' की मृदुला और डॉ. विमला कामकाजी नारियाँ हैं, उन्हें भी यही दिशा पार करनी पड़ी। यहाँ भी अर्थ के पीछे पारिवारिक संबन्ध सिसकता जान पड़ता है।

कामकाजी नारी की आर्थिक सुरक्षा भी वैवाहिक जीवन में असंतुलन एवं असामंजस्य बनकर खड़ी रहती है। अर्थ व्यक्ति को जिसप्रकार जोड़ता है उसी प्रकार तोड़ता भी है। श्रीमती प्रभा सक्सेना के 'टुकड़ों में बँटा इन्द्र धनुष' की नायिका चरित्रा एक अच्छी पढ़ी-लिखी स्त्री है और अपने पति से भी अच्छा ओहदा प्राप्त लिए हुए हैं। अर्थ और मानवी संबन्धों के संदर्भ में वह कहती है - "अर्थ मानव संबन्धों का निर्माण करता है। उसे ज़रा थोड़ा ढंग से कहा जाए तो अर्थ ही अर्थ से बननेवाली मानसिकता प्रदान करते हैं और यह मानसिकता ही संबन्धों के विघटन अथवा एकीकरण के लिए जिम्मेदार है। कहा जा सकता है कि आर्थिक स्तर एक स्वभाव बना देते हैं। उसका सामंजस्य अपनी ही स्थिति जैसे लोगों से ही हो पाता है।"<sup>79</sup> आज वैवाहिक बन्धन की तलधरा अर्थ के बल पर ही खड़ी होती है जो दाम्पत्य जीवन में घुटन भरा अनुभव प्रदान करती है।

समकालीन समाज में कई स्त्रीयाँ आर्थिक असुरक्षा के चंगुल में फँसकर अपनी शरीर भी बेचकर परिवार का संभालन करती हैं। मृणाल पाण्डे के 'देवी' में यह चित्र देख सकते हैं। जहाँ माँ बेटी की शादी के धन इकट्ठा करने के लिए देहव्यापार का पल्ला पकड़कर आगे बढ़ती है।



“वह गर्व से बताती है कि आज उसका अपना चकला है। वह खुद अपनी ‘किराएदारियों’ से किराया वसूलती है। बेटी का उसने भारी दहेज देकर विवाह कर दिया है।”<sup>80</sup> माँ ने भी यह समझ लिया था कि अर्थ के अलावा कोई रास्ता नहीं है, ज़िन्दगी की जीत के लिए। यह प्रवृत्ति ‘तापसी’ उपन्यास में भी देख सकते हैं। ‘वृन्दा’ जो विधवा आश्रम में रहनेवाली एक विधवा है, वह अपनी बेटी चुनिया के इलाज के लिए अपना शरीर बेचकर ही धन जुटाती है। आश्रम की एक विधवा वृन्दा के विषय में कहती है, “वृन्दा भी तो अक्सर रात को इसी खिडकी से कूदकर अपने देह-व्यापार की जाती थी। सुबह होने से पहले चली आती थी। आखिर चुनिया की टेढ़ी टाँगों के इलाज के लिए पैसा कहाँ से आता?”<sup>81</sup> यहाँ निरीह एवं अबला नारी की विवशता का चित्रण है, जो बेटी के पालन पोषण के लिए तडपती है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास ‘एक ज़मीन अपनी’ की नीता भी आर्थिक घुटन से त्रस्त होकर अनैतिक चाल से गुज़रने की बात सोचती है। वह ‘कॉलगर्ल’ बनकर नए-नए अफसरों को अपना देह - समर्पण करती है। तिलक उसके संबन्ध में कहता है, “उसकी एक रात की कीमत है आबेराय का डिनर, स्टूडियो-210 की रंगीनशाम, तेजपाल का आखिरी शो, पा खंडाला की आऊटिंग...।”<sup>82</sup> शुभावर्मा के ‘फ्रीलान्सर’ उपन्यास की रोजी और रूमासन्थाल, ‘अकेला पलाश’ की डॉ. खान की बहिन आदि महिलाएँ भी इसी देहव्यापार में आती हैं। वास्तव में अधिकांशतः आधुनिक नारी आर्थिक एवं शारीरिक लाभ के लिए अपनी नैतिकवृत्ति को गद्दे में डालकर अनैतिक संबन्ध में शामिल होती है। मेहरुत्रिसा परवेज़ के ‘कोरजा’ में साजोखाला भी अपने परिवार की रक्षा के लिए स्वयं देह-व्यापार के लिए गयी थी। “रात को खाना खाने के बाद तक भी कोई कुछ तय नहीं कर पाया था कि घर छोड़ना है या नहीं। जब पूरा घर गहरी नींद सो रहा था तब नानी ने देखा एक साया उठकर बाहर जा रहा है। पहले तो वह अवाक् हत प्रभ होकर रह गई, फिर धीरे-धीरे सिर झुक गया। मौन समझौता, मौन स्वीकृति। इस दुनिया का भाड़ झोंककर और भी कहीं मर कर आना है, वहाँ भी मुँह दिखाना है अगर इतना सोच लिया जाय तो आदमी पाप क्यों करें? पर वहाँ की दुनिया से तो बाद में निपटना है, पहले तो इस दुनिया से निपटना है, यहाँ रहना है।”<sup>83</sup> यहाँ साजो खाला। अपने घर की इज्जत को बचाये रखने के लिए अपने तन की आहूति दे रही थी। हम ऐसे सोचें कि आर्थिक विपन्नता एक जीवित स्त्री को ‘जड़’ जैसा बनाती है।

आर्थिक विषमता एवं असहायता में पड़कर अनैतिक मार्ग की ओर घिसनेवाले बहुतेरे मिलते हैं, लेकिन आर्थिक विषमता सुधारने के लिए एक बाप अपनी बेटी को विषचक्र में ढकेल देने की बात कितनी निन्दनीय है। परिवार में अपने पूज्य माता-पिता से भी असुरक्षा का अनुभव कितना दर्दनाक है। निरुपमासेवती के 'बँटता हुआ आदमी' में सुनन्दा के बाप ने अपनी बेटी से अनैतिक काम करवा दिया। अपनी असहाय दशा का वर्णन करते हुए सुनन्दा कहती है - "मुझे उसकी हरकतें बुरी लगी। पर सुनता कौन? वह सारी गरीबी दूर कर सकता था। डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इंतजाम था... पता है, मैं कितने बरस की थी... बारह साल महीने की।"<sup>84</sup> परिवार की यह तीव्र झोंका एक बेबाक लड़की कैसे सहन कर पाती है? प्रस्तुत उपन्यास में मंजू शरदगुप्ता की पत्नी है। शरद फिल्मी संसार में काम करता था। आर्थिक अभाव के कारण उसका गृहस्थी जीवन काँटा बनकर उसे चुभाता रहता है। परिस्थितियों से मज़बूर होकर वह अपने माता-पिता के घर चली जाती है, किन्तु विपरीत परिस्थितियाँ उसे वहाँ भी नहीं छोड़ती। धनाभाव उसके संपूर्ण स्वप्नों को चूर-चूर कर देता है। 'मंजू' अपने पति को एक बड़े अफसर के रूप में देखना चाहती है और अपने घर को हर ज़रूरत की चीज़ों से सजा हुआ तथा स्वयं को गहनों से लदा हुआ देखना चाहती है। लेकिन धनाभाव ने उनके दाम्पत्य जीवन को बिगाड़ दिया।

परिवार के संचालन के लिए अर्थ एक कीमती साधन है। पेट की भूख के आगे सब व्यर्थ है। घर की गरीबी भी अनैतिक देह-व्यापार करने के लिए लड़की को बाध्य कर देती है। कृष्णा अग्निहोत्री जी के 'टपरेवाले' उपन्यास में झोंपड़-पट्टी में रहनेवाले पचिया के सामने घर का राशन और माँ की दवाई के लिए पैसों की माँग प्रमुख प्रश्न है, इसलिए उसने अनैतिक मार्ग चुन लिया। "उसे अन्दर की चोट से अधिक पच्चीस रुपये का राशन अच्छा लग रहा था।"<sup>85</sup> निम्नवर्ग की कई गरीब स्त्रीयों इस तरह की समस्याओं का मुकाबला करती हैं। निम्न परिवार की ऐसी बीभत्स समस्याएँ लेखिका यहाँ दिखाती है। अर्थाभाव को दूर करने के लिए अस्मत् व्यापार उतना ही धिनौना सत्य है।

कृष्णा सोबती के 'दिलो दानिश' उपन्यास की महकबानो वकील कृपानारायण की रखैल थी इसलिए घर से या बेटी से भी कोई मान-सम्मान नहीं मिलता था। आर्थिक अभाव ने उसे ऐसा बना डाला। वकील साहब ने महकबानो को बेटी के विवाह पर आने से भी इन्कार कर दिया।

“महक के अन्दर छिपी पडी राख में से चिनगारियाँ सी उठने लगीं। हमारी बेटी की शादी है और उसके जेवर-कपड़े बनने देखने की हमारी खुशी हमीं से छीनी जा रही है।”<sup>86</sup> महकबानो रखैल होने के नाते उसे पत्नी जैसा सम्मान न मिल सकता है और दूसरों से भी न आदर सम्मान। बच्ची की खुशी से भी उसे दूर भगा देता है। महकबानो जैसी औरतों को मर्दों से मुहब्बत मिलने पर भी सामाजिक हैसियत के सामने वह कठपुतली मात्र है। महकबानो ने समझ लिया कि धन के बिना खून के रिश्ते भी खोखले होते हैं तब उसकी अपनी माँ के गहनों की भारी संपत्ती वह वकील कृपानारायण से वापस हासिल करती है तो उस दौलत के साथ गरिमा भी वह हासिल करती है। दौलत की शान-शौकत से वह अपने कुल के कलंक को भी धो डालती है।

आर्थिक अभाव से पुत्री की शादी करनेवाले माँ-बाप का घुटन भरा जीवन चित्रण कुसुमअंसल के ‘अपनी अपनी यात्रा’ उपन्यास में देख सकते हैं। सुरेखा का विवाह उसके काले रंग के कारण नहीं हो पाया, बल्कि उसकी बहिन की शादी घरवालों ने कर दी। लेकिन ससुराल में उसे अनेक मुसीबतें सहनी पडीं। इस पर क्षुब्ध होकर सुरेखा सोचती है, “बाबूजी इतने निचुड़े लग रहे थे - धन से भी, मन से भी... यह हमारा देश कितनी भी प्रगति करें, बेटी को पैदा करनेवाले माँ-बाप का सिर हमेशा झुका रहेगा। जब तक जीते रहे, बेटी की खुशी के लिए बिकते रहे।”<sup>87</sup>

कृष्णा अग्निहोत्री के ‘नीलोफर’ उपन्यास में नीलम और अहमद ने अंतर्जातीय प्रेम विवाह किया। ससुरालवाले इससे सहमत नहीं थे। नीलम की कमाई पर पति एवं ससुर सुखपूर्ण ज़िन्दगी बिताते हैं। लेकिन सास कभी-कभी ‘काफिर’ कहकर उसे सताती रही थी। अहमद आतंकवादी भी थे। पारिवारिक घुटन के बीच सास के अनैतिक व्यवहार ने नीलम पर गहरी चोट लगा दी। वह कहती है, “मुझे बार-बार काफिर कहकर क्यों कोसते हो? तुम भी तो अहसान फरामोश हो। कितने महीनों से कमा रही हूँ... कभी चैन लिया इसी घर में तब भी... मुझे नहीं रहना अब यहाँ।”<sup>88</sup> आर्थिक स्वावलंबन पाने पर भी पति एवं ससुर के व्यवहार ने उसकी ज़िन्दगी को चकनाचूर कर दिया।

‘नीलोफर’ उपन्यास में जुगगी ने अपनी आर्थिक असुरक्षा हेतु पत्नी को देह-व्यापार की ओर गिरा दिया। वह कहती है - “रुपया ! मैं ने तो कब से एक टकसाली रुपया देखा भी नहीं।”<sup>89</sup> झांझर के पिता ने भी उसे बेच दिया था तब उसका कहना था - “मेरा बॉस (बाप) सचमुच मुझे

किसी दिन पंडित के हाथ बेच देगा। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।”<sup>90</sup> उसीप्रकार ससुर ने भी अर्थाभाव के कारण उसे आगे बेच दिया। वह अपनी व्यथा स्पष्ट करती हुई कहती है, “मैं क्या करूँ? मेरे ससुर ने एक बोरी ज्वार और तीन सौ रुपये लेकर मुझे फिर इसके साथ भेज दिया।”<sup>91</sup>

‘ज्वार’ उपन्यास की लाजो का परिवार भी आर्थिक अभाव से टूट गया है। पति उसको छोड़कर चला गया। तब लाजो दूसरे घर में बर्तन माँजकर अपनी रोज़ी रोटी कमाने लगी। “छोटी के जन्म से पहले ही उसका आदमी घर छोड़कर चला गया था। धीरे-धीरे लाजो भी कमाने लगी और वह स्वयं जो चार पैसे कमाती अब उन्हें छीननेवाला भी कोई नहीं था। हाँ रहने की जगह न होने के कारण उसे अब तक काफी कष्ट सहना पड़ा था।”<sup>92</sup> पति भी कर्तव्य विमुख होने पर ही पत्नी की गति बहुत दुःखमय बन जाती है।

‘तत्सम’ की वसुधा विधवा होने पर ससुराल में ही जीना चाहती है। लेकिन अर्थ के लालची ससुरालवालों को अपने पुत्र की जान से ही अधिक पुत्र की धनराशी पर लगाव था। “निखिल की प्रोविडेंट फंड, इंश्योरंस, बैंक बेलेन्स की सब धनराशि वसुधा के नाम देखकर ससुराल के लोगों का उसके प्रति रवैया बदल जाता है। सब संपदा हथियानेवाला साधन के रूप में देखने लगते हैं।”<sup>93</sup> ससुरालवालों से स्नेहपूर्ण व्यवहार चाहकर वसुधा ने उस घर में रहने को निश्चय किया था लेकिन उस घरवालों को अपने पुत्र से भी अधिक धन की रकम अधिक मंजूर था। अन्त में वह कॉलज में लक्चर की नौकरी प्राप्त कर उस बन्धन से मुक्ति पा लेती है।

पारिवारिक उत्तरदायित्व के बोझ से ही लोग अन्यस्थानों में काम करके पैसा कमाने की इरादा करते हैं जो पारिवारिक घुटन का कारण बन जाता है। ‘पीली आँधी’ में माँ ने अपने बेटे से पूछा कि “क्यों बेटा! मिर्जापुर नहीं जाओगे? तो बेटा रामेश्वर ने उत्तर दिया कि “नहीं माँ वहाँ, अब पहलेवाली कमाई नहीं। हमें तो राय बक्सगंज से भी और आगे जाना होगा। कंपनी सरकार तक। देख नहीं रही हो कि, घर में खानेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है।”<sup>94</sup> पारिवारिक दायित्व के बोझ से ही रामेश्वर को दूर देश जाना पड़ा फिर भी पारिवारिक घुटन ज़ारी रहा।

‘मेरा नरक अपना है’ उपन्यास में हरीन्द्र एक मध्यवर्गीय परिवार का व्यक्ति है जिसने परिवार के लिए अथक परिश्रम करके अपनी पत्नी एवं बच्चों को सुखी बनाना चाहा। इसी बीच उसने अपनी माँ एवं बहन को जहरीला अनुभव भी दिया। “पैसा कमाने की धूँध में वह हर हादसे झेलते ही चला जाता है लेकिन हरीन्द्र के स्वभाव का उसकी पत्नी गलत फायदा उठाती है।”<sup>95</sup>

आर्थिक अराजकता से महानगर में लोग विवश होकर जीते हैं। उन्हें हर तरह की मुसीबतों को सहना ही पड़ता है। 'पतझड़ की आवाज़ें' उपन्यास में निरुपमासेवती ने इसका उल्लेख किया है जैसे "अनुभा दिनभर की थकावट के बाद निश्चिन्त होकर अपने पलंग पर लेट कर सुस्ता न पाने के कारण खीझती है। उसे परिवार के सदस्यों के शोर-शराब में चैन नहीं मिल पाता है। वह जिस कमरे में सोती है वह कमरा पाँच-सात पारिवारिक सदस्यों के सामान से लदा रहता है और हर कोई वहाँ अपनी ज़रूरत के अनुसार चक्कर लगाता रहता है। परिवार बड़ा है, लेकिन रहने की जगह कम है। आर्थिक संकट से ग्रस्त होने के कारण अल्मारियों की फिटिंग के अभाव में कपड़ों को, कमरों में लगी कीलों पर एवं बंधी तारों पर टाँगनी पड़ती है। जब कभी कोई सदस्य आवश्यकतावश परदा खींचता है, पलंग पर लेटा आदमी अव्यवस्थित हो जाता है, उसकी नींद भंग हो जाती है। इस बात से अनुभा अक्सर परेशान रहती है और आक्रोश में कुढ़ती रहती है।"<sup>96</sup> आर्थिक संकट से ग्रस्त परिवार की मानसिक दशा का चित्रण यहाँ हुआ है। अनुभा अपनी बुआ व 'कज़िन' के आने से खीज रही है और सोचती है "जब कि घर के सदस्य तो पहले ही बड़ी तंगी से निर्वाह करते हैं। उनके कारण सब की दिनचर्या अस्त-व्यस्त होकर रह जायेगी, घर की व्यवस्था बिखर कर रह जायेगी, उसे अब मज़बूरी में छोटी बहन के साथ सोकर और भी अधिक थकना पड़ेगा।"<sup>97</sup> आर्थिक असंतुलन की सीमित दायरे में रहनेवालों की विवशता का चित्रण लेखिका ने यहाँ किया है।

दौलत देकर बेटी की शादी करने के बाद अधिकांश माता-पिता अपनी संपत्ति का हिस्सा बेटी को न देते हैं। अपनी सारी जायदाद का अधिकार पुत्र पर सौंपा देते हैं। 'वंशज' में शुक्ला साहब की सुधीर एवं सेवा दो संतानें हैं। बाह्यरूप से सुधीर एवं शुक्ला साहब दोनों झगड़े करते हैं क्योंकि पिता अंग्रेज़ी लोगों के पक्षधर हैं और सुधीर इसके विरुद्ध है। लेकिन संपत्ति की बँटवारा करते समय पिता ने सारी संपत्ति अपने बेटे को रख दिया। तब रेवा रूँसाए स्वर में पूछती है - "डैडी ने मेरे बारे में कुछ नहीं लिखा अंकल।"<sup>98</sup> शुक्लासाहब सोचते हैं कि - "आखिर उनका वंश चलता तो सुधीर से है न? उसके अपने परिष्कृत व्यक्तित्व की स्मृति सुधीर के व्यक्तित्व से रहेगी, रेवा से नहीं। अपनी और अपने मान्य अंग्रेज़ों की तमाम पुरानी पीढियों की न्यायप्रियता पर उनका गहरा विश्वास था। पुत्र को जीवन में कुछ बनता होता है, कि पुत्री को पराये घर का धन, समझकर पाल-पोसकर सुपात्र के हवाले कर देना होता है, बस।"<sup>99</sup> पिता के मन में भी आर्थिक परिवेश में बेटा-बेटी को भिन्नता के स्तर पर पाया जाता है तो पारिवारिक घुटन का कारण बन जाता है।

मध्यवर्गीय परिवार में आर्थिक असुरक्षा एक बड़ी मुसीबत है। घर का संचालक बहुधा पिता है। पिता की मृत्यु होने पर घर संचालन का दायित्व पुत्र एवं पुत्री के ऊपर आ जाता है। यदि वह शिक्षा करनेवाला हो तो उसे शिक्षा पूरा करने की फुरसत भी न मिल पाती है। रजनीपनिकर के 'दो लड़कियाँ' उपन्यास के अमल बी.ए पढते समय ही उसके पिता की मृत्यु हुई। घर का संभालन उसके ऊपर आया। तब उसने अध्ययन छोड़कर आकरी की दूकान संभालना शुरू किया। उसके लिए जीवन का अर्थ है - "बिना किसी चिन्ता के स्वतंत्रता से साँस लेना, मन का खाना, मन का है पहनना, ज़िन्दगी के छोटे-छोटे कर्तव्य निभाते रहना और किसी को प्यार करना।"<sup>100</sup> आर्थिक अभाव के एहसास ने ही अमल को ऐसे असमंजस में डाल दिया।

अपूर्ण आर्थिक स्थिति पारिवारिक रिश्तों की त्रासदी को जन्म देती है। 'आवाँ' की नमिता पिता की मृत्यु के बाद पढ़ाई भी छोड़कर माँ के साथ 'श्रमजीवा' में काम करती है लेकिन माँ से दो मीठे बोल तो दूर, हमेशा गालियाँ ही सुनती है - "कमीनी कुकरी! अर्थाँ उठी नहीं बाप की ओर तू हो गई जनरैल? पीछे खडी सुन रही ली तेरी गुराहट, कुन्ती ने भले ही पूछी तो झपट पडी लाग-लिहाज छोड उसे चबाने। ला मैं तेरे दाँत तोड़कर घर मुगरी से। चबा फिर देखती हूँ कैसे चबाती है कुतिया।"<sup>101</sup> इस माँ के प्रति मृदुला जी की टिप्पणी बहुत ही मार्मिक है कि "अपराध बोध से अछूती, आत्मलिप्त, छोटी-छोटी कुटिलताओं से छोटी-छोटी कुटिल सुविधाएँ जुटाती माँ, जिसके लिए बेटी ऐसा उपकरण है, जिसे मानवीय सरोकार की ज़रूरत नहीं है। वह उसका पैसा भी तभी तक चाहती है, जब तक वह उसे तिल-मिल खटकर कमाए। सफलता, उन्नति, जीवन रास कुछ पाकर नहीं, स्वयं वह एक रसीली औरत की तरह हास-परिहास कर सकती है, ज़िन्दगी को भरपूर जी सकती है, पर बेटी के लिए दारोगा बनी रहती है।"<sup>102</sup> आर्थिक अपर्याप्तता एवं ज़िन्दगी के खोखलेपन से ही ऐसी माँ बेटी के लिए आक्रोश भरी राक्षसी बन जाती है।

सिम्ली हर्षिता के 'संबन्धों के किनारे' में हरतेज उर्फ राजो को उसके माँ-बाप ने आर्थिक तंगी के कारण बचपन में ही बेच दिया था। इसलिए हरतेज जहाँ से भी निकलता था उसकी बदनामी उसके साथ-साथ चलती थी "देखो-देखो, यह वही राज है जिसे इसकी माँ ने गिरवी रख दिया था... जिसके नाम पर बाप ने उधार खाया था।"<sup>103</sup> अपनी आर्थिक विषमता को सुधारने के लिए संतानों को भी बेचने का निन्दनीय पाषाण मनोव्यापार समकालीन समाज का यथार्थ है।

घर के उत्तरदायित्व को थामनेवाले पिता यदि अकर्मण्य हो तो घर का संचालन कैसे करें? रजनीपनिकर ने अपने 'एक लड़की दो रूप' उपन्यास में ऐसे पिता का चित्रण किया है जो अकर्मण्य और आलसी जीवन बिताता है। इसपर क्रुद्ध होकर बड़ा पुत्र अलग रहने लगा। काम चोर पिता ने बड़ी बेटी माला को सेठ कनौडिया की सचिव का काम सौंप दिया और छोटी पुत्री को डेन के साथ तस्करी हेतु विदेश भेजकर काफी धन कमाने की कामना की। पुत्री की आय से मुग्ध होकर पिता अपनी ज़िन्दगी बिता रहे। उनके अनुसार - "मैंने बच्चों को इस समता के युग में आज्ञादी दे रखी है। बच्चे जैसा चाहें रहे। जब चाहे खाएँ, पिँ, जहाँ चाहें जाएँ-आएँ"<sup>104</sup> इसप्रकार पिता सब कर्तव्यों से छुट्टी पा लेता है। यहाँ बेटी की ज़िन्दगी का घुटन प्रभावी ही लगता है।

परिवार में पति-पत्नी दोनों कमाऊ होने पर भी आय के अनुसार खर्च न करने पर आर्थिक असंतुलन बढ़ जाता है, जो पारिवारिक घुटन का कारण बन जाता है। 'क्योंकि' के दीपक और आभा के जीवन में पारिवारिक घुटन इसी आर्थिक असंतुलन से पैदा हुआ था। उनका संवाद है - "शायद अब बच्चों की फीस की तारीख भी पास आ रही है। इस बार का, दोनों का बिल पूरे एक सौ बत्तीस रुपए का है। कमबख्त, इन स्कूलों की फीस भी कितनी ज़बरदस्त होती है, तुम ने बिल देखा।"<sup>105</sup> पैसे की कम कीमत और खरीदनेवाली सामग्री की महँगाई ही पारिवारिक असंतुलन को बढ़ावा देती है। 'क्योंकि' की नायिका की शिकायत है - "मैं कहती हूँ - इधर इतनी बड़ी-बड़ी फीस भरनी पडती है, उधर महँगाई की यह दशा है कि किसी चीज़ पर हाल नहीं रखा जाता।"<sup>106</sup>

ग्रामीण जीवन में नहीं शहरी जीवन में भी महँगाई की समस्याओं का हल नहीं होता। चीज़ों का मूल्य दुगुना एवं तिगुना भी है, उसे पाकर जीवन यापन करने के लिए मनुष्य ज़बरदस्त हो जाता है। जिसके पास पैसे हैं, वे यश, प्रतिष्ठा आदि आसानी से पा सके। कृष्णा अग्निहोत्री के 'अभिषेक' उपन्यास में इस तथ्य की अभिव्यक्ति है - "सुधीर ने मरकर भी आर्थिक सुरक्षा वेणु को प्रदान कर दी थी, वो बार-बार कहता था - रुपया वह अस्त्र है कि व्यक्ति, प्रतिष्ठा, यश, पद, सब खरीद सकता है।"<sup>107</sup> लेकिन आर्थिक पराधीनता में तडपते मानव के लिए 'महँगाई' नरक ही है।

महँगाई आज बढ़ती हुई समस्या है। साधारण लोगों को जीने के लिए इस मूल्य की बढ़ाई बाधा है। बंबई जैसे महानगर में यह महँगाई दुगुनी या चौगुनी है। यहाँ आर्थिक सुरक्षा के लिए आनेवाले लोग चीज़ों की महँगाई सुनकर असमंजस्य में पड़ जाते हैं। 'नरक-दर-नरक' में जगन

उच्च शिक्षित होने पर भी बेकार होने के कारण काम की तलाश में मुंबई चला गया। कम तनख्वाह के कारण इटी सीढ़ियों वाली श्रीकृष्ण लॉज में उसे एक महीने को नब्बे रुपए किराया देकर रहना पड़ता है। आर्थिक अभाव और महँगाई के कारण जगन जैसे कई लोग गन्दगी से भरी हुई गलियों में अपनी घुटन भरी ज़िन्दगी घसीट लेते जाते हैं।

साधारण व्यक्ति की आय और व्यय में असंतुलन आ पाये तो वह रिश्तत माँगकर संतुलन के लिए कोशिश करता है। महँगाई बढ़ने पर आम आदमी लाचार बनता है - “चार आने से कम तो कोई चीज़ ही नहीं मिलती है। महँगाई के मारे तो नाक में दम आ गया है। पेट को खाये या तन को ढाँके, जितना कमाते हैं, दो टाईम की पेट की आग में ही चला जाता है।”<sup>108</sup> सामाजिक कार्य-व्यापार एवं शासन प्रणाली की अराजकता के कारण रिश्ततखोरी बढ़ता है एवं भ्रष्टाचारी को सही रास्ता भी खोल देता है।

### 3.2 राजनीतिक यथार्थ

राजनीति जनता के सर्वतोन्मुख विकास एवं सुचारु चलन के लिए निर्मित सुव्यवस्थित प्रणाली है जिसके द्वारा जनता अपनी भलाई की राह ढूँढने में सक्षम बन सकती है। भारत जनतन्त्रात्मक देश होने के कारण इस शासनप्रणाली की सफलता के लिए राजनीतिक दलों का अस्तित्व अपेक्षित है। अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने के बाद जवहरलाल नेहरु, इन्दिरागाँधी, लालबहादूर शास्त्री आदि राजनैतिक नेताओं ने जनता की समस्याओं को समझकर उन्हें हल करने की योजना बनायी। लेकिन आज राजनीति सत्ता मात्र के लिए रही है। “पूर्व स्वतंत्रकालीन राजनीतिक दलों का मुख्य लक्ष्य स्वतंत्रता की प्राप्ति था। किन्तु स्वातंत्र्योत्तरकालीन दलों का लक्ष्य स्वतंत्रभारत की सत्ता को अपने हाथों में लेना था।”<sup>109</sup> समाजवादी जीवन पद्धति अपनाने पर भी ज़मीन्दारी प्रथा एवं सामन्तवाद का अन्त नहीं हुआ। जो काम पहले ज़मीन्दारी पूँजीपतियों ने लिया था, अब वह राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में है।

आज की कलुषित राजनीति केवल पैसे के बलबूते पर कायम रहती है। आज भारतीय जनता राजनैतिक नेताओं के भ्रष्टाचार, दलबन्दी एवं आपसी फूट, सांप्रदायिक दंगा, चुनाव की हथकंडे, दल बदलने की वृत्ति, पद लालसा आदि कई समस्याओं की शिकार बन गई है। प्रेमचन्द जी की राय में “साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना



नहीं है - उसका दरजा इतना न गिराइये। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है।”<sup>110</sup> इसी सिलसिले में महिला लेखिकाएँ भी अपनी कृतियों में राजनीतिक विचारों को बड़ी सफलतापूर्वक देख-परख कर उनकी अन्तसत्ता को प्रस्तुत करने में सक्षम रही हैं।

### 3.2.1 राजनीतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार

समकालीन समाज में जीवन के सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में, सरकारी अफसरों के बीच और सब कहीं भ्रष्टाचार चल रहा है। मनुष्य की भावना में राजनीति की जड़ें भी जुड़ी रहती हैं। “स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात व्यक्ति की राजनीतिक चेतना विविध स्वार्थी प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्फुटित हुई। सदा के लिए आपा-धापी ने राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म दिया। भ्रष्टाचार के कारण प्रत्येक व्यक्ति निम्न और उच्च स्तर पर सत्तात्मक राजनीति की शतरंज में अपनी गोटी बैठाने के प्रयत्न में संलग्न हो गया। व्यक्तिगत स्वार्थों ने दल-बदलू राजनीति को जन्म दिया। राजनीतिक दलों के नेता एक के बाद दूसरा दल बदलते रहे। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जनता ने जो सपने संजोए थे, वे धराशायी हो गये। राजनीतिक हत्यायें, घेराव, हड़ताल, बन्द और तथावत् प्रवृत्तियाँ राजनीतिक अभिशाप के रूप में सामने आयीं।”<sup>111</sup> समकालीन समाज ये सारी समस्याएँ आमने-सामने देख रहा है।

वर्तमान राजनीति में प्रलोभनों से वशीभूत होकर ‘दल बदलू’ प्रवृत्ति भी चारों ओर चलती है, जो प्रजा के साथ विश्वासाघात है। राजनीतिक कुचक्र इस सीमा तक भयावह हो गया है कि देश के जीवन से सिद्धान्त और आदर्शों का लोप हो गया है। राजनीतिक दल-बदल, रोज़ सरकारों का बनना और गिरना, मुख्यमंत्री से लेकर क्लर्क और चपरासी तक मची हुई लूट-घाट, नोच खसोट और एक विचित्र सी आपाधापी में आज मनुष्य बुरी तरह कुचला जा रहा है। आधुनिक राजनीति कुर्सी का पर्याय बन गयी है।

ममता कालिया के ‘प्रेम कहानी’ उपन्यास में डॉक्टर गुप्ता के अस्पताल में जब अचानक मलेरिया की बीमारी की गोलियों का स्टॉक खत्म हो गया तो लोगों ने शिकायतें करना शुरू किया। गिनेस जब इसके विरोध में गुप्तजी से शिकायत करते हुए यह बताना चाहता है कि इनका हमसाया गरीबी है और भूखमरी इनका भोजन है तो डॉक्टर गुप्ता कहते हैं - “तो इसका इलाज हम कहाँ

से करें। जायें तो ये गाँधी टोपीवाले नेताओं के पास उनसे इलाज माँगें। उनसे क्यों नहीं कहते, जिन्हें ये चुपचाप जाकर वोट पकड़ा आते हैं।”<sup>112</sup> डॉक्टर ने यहाँ अपनी बेबसी एवं राजनैतिक नेताओं की दायित्वहीनता पर व्यंग्य किया है। आज “प्रजातांत्रिक मूल्य का पतन हो चुका है। भारत की निरीह जनता शोषण का शिकार हो रही है।”<sup>113</sup> राजनीतिज्ञों के स्वार्थ एवं दंभ का चित्रण ममता जी ने यहाँ किया है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने ‘चाक’ उपन्यास में राजनीतिक भ्रष्टाचार को यों शब्दबद्ध किया है - “हमने ऐन वक्त पर पकड़ लिए कान कि बेटी, वे ज़माने न समझना जब पैंटवाला आदमी किसान को आसानी से उल्लू बना जाता था और वे बेचारे हाथ जोड़कर रह जाते थे। हम मामूली किसान भी नहीं किसान प्रधान है। पचासियों हजार हजम कर गये। अफसरों को तर कर रही हो। हम क्या रोड के जमाई थे कि हमारा हिस्सा पी गये? पच्चीस हज़ार धर जाओ।”<sup>114</sup> वर्तमान खोखली राजनीति पर इशारे करते हुए डॉ. शशि जेकब का चिन्तन यहाँ स्मरणीय है - “आज न्याय प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। न्याय के लिए अनेक जटिल प्रक्रियाओं को पार करना पड़ता है। अनेक पड़ावों पर रुकती - रेंगती आज की न्याय प्रणाली यथार्थ में खोखली है।”<sup>115</sup> न्याय प्रणाली आज निरीह जनता के लिए नहीं है बल्कि जो सत्ता के लिए आबद्ध नेतागण के हाथों में है।

आज भ्रष्टाचार का जाल इतना बिछा हुआ है कि अब मानवतावादी दृष्टिकोण भी नष्ट हो चुका है। इस संदर्भ में ‘दहकन के पार’ में निरुपमा सेवती का विचार भी उल्लेखनीय है - “युगों से चली आयी सामाजिक तहों की छानबीन करते हुए तुषार भी अपने बच्चों में जिस नयी मनुष्यता को देखती है, वह पहले सही मनुष्य होने की फिर उसमें ऊपर उठने की कोशिश जैसी बात है और हमेशा यह बात भी दिल को बेहद कचोटती रही है कि, सत्तालोलुप राजनीति ने आर्थिक, सामाजिक तो क्या, धार्मिक तल पर भी मनुष्य का सुख, आनन्द कितना छीना है। धर्म जैसे परम मुक्त अनुभव को भी राजनीतिक घेरों में कैद करना चाहा है।”<sup>116</sup> बेचारी जनता ही इस भ्रष्टाचार का शिकार बन जाती है।

‘मैं और मैं’ उपन्यास में मृदुलागर्ग भ्रष्टता के तरीके को समझाती है - “मज़ा तब आता है जब रुपये निकलवाने के लिए कस कर मेहनत करनी पड़े। तरह-तरह के कलात्मक झूठ बोलने पड़े। ...जानते नहीं सालों, हमारे पास जीनियस दिमाग है। उच्चतम कोटि का साहित्यकार हूँ, समाज का दायित्व है, मेरा पोषण करे। अथवा रुपया हाथ का मैला है जी हाँ, यह मैला सिर्फ बड़े

आदमियों की हथेलियों पर जमता है। हमें मिल जाये तो हम साबुन की तरह उसका इस्तेमाल करें।”<sup>117</sup> भ्रष्टता केवल एक जगह में नहीं बल्कि सर्वत्र व्याप्त हो रही है।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के चारों ओर रिश्तत एवं भ्रष्टाचार का जाल है। राजनीतिक कुचक्र में पड़कर हम रिश्तत देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। आपाधापी एवं अराजकता आज राष्ट्रीय वातावरण का मुखौटा है। कृष्णा अग्निहोत्री भारतीय लोगों को रशिया का आदर्श लेने के लिए कहती है। उन्हीं के शब्दों में - “तुम आश्चर्य करोगी कि रशिया की व्यवस्था में भ्रष्टाचार नहीं है.... क्योंकि उनका यह सिद्धान्त है कि, डबल रोटी-सी चीज़ चुरायी तो उसे भी कठोर दण्ड दो तब घुस की बात तो पनप ही नहीं सकती।”<sup>118</sup> वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का कटुआपन हम कई विधाओं में अनुभव कर सकते हैं।

आज राजनीति इतनी विषैली बनकर आयी है कि आतंकवादी एवं क्रूर डाकू लोग भी विधानसभा में आकर शासन की बागडोर संभालते हैं। ‘चंपल’ वन को प्रकंपन करनेवाली डाकूराइन ‘फूलन देवी’ भी विधानसभा में आयी। डाकू होने पर भी वह न्यूनता न मानकर उसको भी सम्मानित स्थान देने के लिए आज की राजनीति कोशिश करती है। डॉ. दिवाकर दिनेश गॉड की राय में - “आज़ादी के पश्चात तपस्वी एवं सेवा की तपोमूर्ती ऐसे लोग भारतीय राजनीति में आये। परन्तु शीघ्र ही उनका स्थान ऐसे स्थायी, अधम एवं निकृष्ट लोगों ने ले लिया जो राजनीति के माध्यम से सत्ता प्राप्त कर अपार धन दौलत के मालिक बन बैठे। राजनीति का संपूर्ण तौर पर व्यापारीकरण हो गया।”<sup>119</sup> सत्ता में कब्ज करने के लिए जनशक्ति, धनशक्ति एवं बुद्धिशक्ति ज़रूरी है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ सत्ता में रहना अपनी बपौती समझता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में इन अवसरवादी नेताओं के खेल देख सकते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ‘अल्मा कबूतरी’ में श्रीराम शास्त्री जैसे डाकू को राजनेता का वेष पहनाकर राजनीतिक भ्रष्टता को प्रकाश में लाती है। डाकू श्रीराम का कायाकल्प पिछले चुनावों के ज़रिए श्रीराम शास्त्री के रूप में हुआ है। जनतंत्र ने प्रमाणित कर दिया कि किसी भी नागरिक के लिए उसके द्वार खुले हैं। श्रीराम बरसों से देखता चला आ रहा था कि इस बुलन्द दरवाज़े से उसके जैसे कई समाज-विरोधी माने जानेवाले तत्व सत्ता के साम्राज्य में घुसपैठ बना चुके हैं। फिर उसने तो कई बार देश की सेवा में लिए पुलिस को अमूल्य सेवाएँ दी हैं, राजनैतिक लोगों के काले चेहरे चमकाने में मदद की है, पार्टियों की हालत सुधारने के लिए धन और चुनाव को बुलट के दम पर अपने पक्ष में करने के लिए बल प्रदान किया है और सत्तर

बूथों पर कब्जे किए थे। उसी अहसान के बदले धर्मधुरीनों ने श्रीराम को अपनी पार्टी का टिकट दिया और जीत जाने पर मंत्री बनाकर आसीन कराया। श्रीराम जानते हैं कि 'बन्दूक की नली से निकली ताकत से उनके गिरोह में गाँव-बीहड़ के इलाके ही नहीं, जिला शहर और कमिश्नरी स्तर के शहरों तक हिला डाला था। अब तो राजधानी पर दस्युराजों का कब्जा है। मुख्यमंत्री जदीश्वरसिंह से उनकी मुलाकात 'ताकत' के लेन-देन पर ही हुई थी। "श्रीराम, शेर कलेजेवाला डाकू, बीहड़ों में पुलिस को गीदड - सेना समझकर धमका देता था। शहरी विधायक आज उस शेर दिल को दिल का रोग लगा रहे हैं। साली राजनीति की ऐसी तैसी।"<sup>120</sup> यहाँ राजनीति की परंपरा में आई हुई गिरावट एवं मूल्यहीनता हम समझ सकेंगे।

राजनैतिक नेताओं के बल पर पूँजीपतियों के समान निम्नवर्ग का शोषण करके अपनी आर्थिक एवं मानसिक तृप्ति पानेवाले लोगों का चित्रण चित्रामुद्गल के 'आवाँ' में दृष्टव्य है। कामगार अघाडी ट्रेड यूनियन के नेता हैं अन्नासाहब, जिन्होंने संसदीय राजनीति में अपनी अलग जगह और अलग पहचान बना ली है। उन्होंने कामगार अघाडी के महासचिव देवीशंकर पाण्डे की पुत्री नमिता को अपनी वासना का शिकार बनाया। पवार भी राजनीतिक महत्वाकांक्षा अपनी नज़र में डालकर, अन्नासाहब के रास्ते पर चलकर अपनी दलित पहचान कायम करना चाहता है। इस अघाड़ी के एक महत्वाकांक्षी नेता शिवहरे कामटेकर ने माफिया गिरोह से साँठ-गाँठ करके नमिता के पिता की हत्या करने की कोशिश की और दलितों एवं मज़दूरों का मसीहा बनने की खातिर गरीबों की झोंपड़ों में आग लगवाई थी। 'आवाँ' उपन्यास की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री गोविन्दसिंह ने लिखा है, "हिन्दी में ट्रेडयूनियन और श्रमिकों पर लिखा यह पहला उपन्यास है, जिसमें चित्रा मुद्गल ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर न केवल इनके मिल मालिकों और पूँजीपतियों के साथ संघर्ष को चित्रित किया है, बल्कि उनकी आपसी ईर्ष्यागत राजनीति को भी प्रस्तुत किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारतीय मज़दूरों को भीतर और बाहर दोनों फ्रंटों पर लड़ना है, एक अपने नेताओं के साथ आपस की भीतर घाती लड़ाई में। इनके अलावा माफिया गवली और छोटा राजन के गिरोह भी हैं।"<sup>121</sup> अनैतिक कर्मचारी व राजनेताओं का प्रभाव किस प्रकार समाज को दूषित एवं कलुषित बनाता है इसका चित्रण 'आवाँ' में मिलता है।

लोकतंत्र में अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला है। "चुनावों में बढ़ते हुए खर्चों के कई दुष्परिणाम हुए हैं। एक चुनाव जीतने के लिए आवश्यक खर्च वैधानिक रूप में नहीं किया

जाता। इसलिए वह छुपाकर किया जाता है। इस प्रवृत्ति ने कानून के उल्लंघन की प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित किया है जो कि अनैतिकता से चुपचाप समझौता करता है। जीतने के मौके बढ़ाने के लिए उम्मीदवार अपनी जेब से अधिक खर्च करता है और वह विधानसभा या संसद में चुनकर चला जाता है तो वह हमेशा इस ताक में रहता है कि कब उसका घाटा पूरा हो। बस इसी प्रकार भ्रष्टाचार स्थान लेता है।<sup>122</sup> राजनीति के भ्रष्टाचार की अधिकता चुनाव की पहली सीढ़ी पर ही शुरू होती है।

### चुनाव

भारतीय चुनाव प्रक्रिया में निस्वार्थी, सेवाभावी एवं ईमानदार व्यक्ति उम्मीदवार होना आवश्यक है। देश एवं राज्य प्रगति की डोरी इन शासनकर्ताओं के हाथ में है। जनतंत्रात्मक चुनाव प्रणाली में आज कई दूषित गड़बड़ियाँ दीख रही हैं। स्थानीय चुनाव से लेकर लोकसभा चुनाव तक जातिवाद एवं धर्मवाद को अधिक स्थान दिया जाता है। षड्यंत्रता युक्त आज की राजनीति केवल सत्ताधारियों की स्वार्थचालित आकांक्षाओं के लिए गंदगीयुक्त बनवायी गयी है। चुनावोपरान्त पूँजीपतियों के इशारों के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था बदल जाती है। गरीब एवं निम्नजाति के लोग इस शासनतंत्र के शिकार बन जाते हैं। आज शासनकर्ता स्वार्थ, धोखेबाजी, बेईमानी जैसे कुचक्र की चाल से जनता के विश्वास पर कलंक डाल देता है। कई महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में चुनाव की अमानवीयता पर नज़र डाल कर उसका तीखा चित्रण किया है।

‘महाभोज’ की लेखिका श्रीमती मन्नु भण्डारी ने आज की राजनीतिक चुनाव का अनावरण करते हुए लिखा है - “चुनाव जीतने के लिए सारा ज़ोर लगा दिया है सरकार ने। पर मैं पूछता हूँ कि क्यों? मैं तो हारा हुआ आदमी हूँ - मुझसे भला कैसा डर? अरे जनता ने भरोसा करके आपको कुर्सी पर बैठाया है और कुर्सी पर बैठकर आपने जो कुछ किया जनता के हित में ही किया होगा?”<sup>123</sup> मन्नु भण्डारी आगे लिखती है - “आज सारे दिन मुकुल बाबू गोटियाँ ही बिठाते रहे। शाम के भाषण में कौन-कौन से मुद्दे उठाने हैं.... कितने वोट खोने हैं और कितने पाने हैं, अभी तक हरिजनों के बूते पर ही चुनाव जीतते आये थे। पिछली बार इन लोगों ने आँख फेरी तो मुँह की खानी पड़ी।”<sup>124</sup> मन्नु जी यहाँ राजनैतिक कपटता पर हस्ताक्षेप करती हैं।

मंत्री एवं संसद के पद पर विराजमान रहे नेता किन-किन विलासिताओं में डूब रहे हैं यह साधारण जनता भी समझती है। आदिवासियों के बीच का उनका झूठा वादा व्यक्त करके

मेहरुत्रिसा परवेज़ अपने 'कोरजा' उपन्यास में लिखती हैं, "एक दिन चित्रकूट, एक दिन बेलाडीला, एक दिन बगदलपुर जहाँ सरकेट हाऊस में मुड़िया 'डान्स' देखे दो चार लोगों से मिले, फिर चल दिये। यह है आज के मिनिस्ट्रों का बस्तर टूर। कहने को पत्रकारों से कहते हैं, हम आदिवासियों की समस्याओं के लिए आये हैं पर यदि कोई पूछे तो यहाँ की एक भी समस्या का नाम नहीं गिना सकेंगे।"<sup>125</sup> राजनेताओं की विलासिता वृत्ति का पर्दाफाश लेखिका ने यहाँ किया है। जनता के लिए कल्याणपूर्ण शासन का वादा करके ही सत्तामोही शासन का प्रबन्ध शुरू करता है।

'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा जी ने तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का सटीक चित्रण किया है। तत्कालीन शासन व्यवस्था पर दृष्टि डालकर दादा ने कहा - "मातौन, दुरभाग तो यही है कि जिस सरकार ने अस्पताल बनवाया था, तब के बाद वह सत्ता में आई ही नहीं। जिस विरोधी पार्टी ने दंगा कराया था वह उस अस्पताल को क्यों चलने देगी? उनका बस चले तो वॉडरी समेत गिरवा दें। किवाड़ टाटी जलवा दें। राज-काज में बस यही रह गया है अब।"<sup>126</sup> जिस दल का शासन होता है वह अपना काम पूरी तरह से न निभाता है। विरोधी दल के नेता उस संरंभ की प्रगती के बदले उसकी गिरावट में भी ध्यान देते हैं। अस्पताल खोलने का तीव्र परिश्रम मन्दाकिनी करने लगी। तब महाराज ने उसे संभालते हुए बताया कि, "राजकाज में तेज़ी लाना अपने हाथ की बात नहीं। वे लोग अपने तरीके से करते हैं हर काम। नौकरशाह और राजनेताओं के हाथ का खिलौना हो गया है हमारा जीवन। यहाँ प्रजातंत्र नहीं, शोषणतन्त्र लागू है।"<sup>127</sup> शोषित वर्ग की दयनीय अवस्था का चित्रण यहाँ किया गया है। गरीबों की निस्सहायता पर इशारा देकर महाराज ने फिर उसे समझौता कर लिया - "बिटिया, तुम विवेकमती हो, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी चातुरी प्रशंसनीय है, लेकिन इतना समझ लो, गरीब व्यक्ति दीन भी हो जाता है और निर्बल भी। जुझारु क्षमता का क्षय होने के कारण संतोषी भी। वे लोग लड़ने-मरने का साहस गँवा बैठे हैं, बस जीना चाहते हैं किसी भी तरह।"<sup>128</sup> लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था 'लोकहित' को केन्द्र में लेकर चलती है। चुनावों के जरिए यह ढोंगी उपक्रम खूब किया जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'तथ्य और सत्य' में चुनाव के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को यों शब्द बद्ध किया है - 'चुनावी गहमागहमी, नए आश्वासन, मीठे सपने, बेड़े-बड़े दावें, छोटे से छोटे को रिझाने की मुद्राएँ, वोटों की खरीद-फरोख्त - नोट से, आतंक से, एक वोट की कीमत - दो से पाँच सौ रुपए। कितना कम आँकता है वोटर अपने दायित्व को। शायद इसलिए वह व्यक्ति नहीं, वस्तु बन

जाता है - निर्जीव बेज़ान, रौंद भी दो तो मन में अपराधबोध न जगे।”<sup>129</sup> मैत्रेयी पुष्पा जी के ‘इदन्नमम’ उपन्यास में मन्दाकिनी ने सोनपुर और समीपवर्ती क्षेत्रों के वोटों को चुनाव में भाग न लेने का आह्वान किया। उसने लोगों को जागृत करके बताया कि - “ये नेता लोग हमें जीवित आदमी भी नहीं केवल वोट समझते हैं। हम सोचने-समझने का मादूदा रखनेवाले इन्सान नहीं। इनकी निगाह में कागज़ पर ठुकी मोहर हैं।”<sup>130</sup> ‘चुनाव एवं वोट’ में होनेवाले खोखलेपन का पर्दाफाश लेखिका ने यहाँ किया है।

### 3.2 गाँधीवाद और युवा पीढ़ी आन्दोलन

महात्मागाँधी की राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव ने 1930 तक हमारी राष्ट्रीय धारा पर अमिट छाप डाल दी। गाँधीजी के आदर्शों एवं मूल्यों को ‘गाँधीवाद’ के नाम से अभिहित किया जाता है। उन्होंने अहिंसात्मक तरीका अपनाकर, असहयोग, सत्याग्रह एवं बहिष्कार आदि को हथौडा मानकर ब्रिटीश शासकों की भी इज्जत प्राप्त की। वे धर्म के महान मूल्यों को राजनीति में शामिल करके राजनीति को अद्वितीय पद देने में सफल हुए। गाँधीवादी विचारधारा अपने आदर्श एवं गुणों के रूप में पूर्ण है। लेकिन उनका ऐसा पालन करना आज के राजनैतिक नेताओं को विदूर की बात है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर उन आदर्शों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मन्नू भण्डारी के ‘महाभोज’ उपन्यास के कुछ पात्र गाँधीवाद के सत्य एवं ईमानदारी को प्रमुखता देते हैं। ‘महाभोज’ के दा साहब, अविजित जैसे पात्र गाँधीवादी धारणा पर चलनेवाले हैं। गाँधीवादी सिद्धान्तों पर व्यंग्य करते हुए अनित्य कहता है - “गरीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीज़ें हैं। जानबूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मज़बूर होना दूसरी बात है।”<sup>131</sup> काजल बानर्जी भी गाँधीजी की समझौता नीति के विरुद्ध कहता है - “जो स्वतंत्रता लड़कर ली जाए उसका मूल्य और होता है।” तब अविजित कहता है - “अहिंसात्मक लड़ाई भी तो लड़ाई है।”<sup>132</sup> गाँधीवाद पर भरोसा लेकर उनके पथप्रदर्शक के रूप में अविजित चलना चाहता है।

गाँधी - इरविन के बीच की समझौता पर जनता के बीच दुविधा हुई। अधिकांश लोग गाँधीजी पर आरोप लगाना चाहते थे। निखिल समझौते के बारे में कहता है - “गाँधी इरविन

समझौते ने उन्हें मंझधार में छोड़ा दिया है। कांग्रेस के कहने पर बीसियों हज़ार किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया था पर समझौते में उनकी बावत कोई कदम नहीं उठाया गया है। पता नहीं अब काँग्रेस क्या करेगी?"<sup>133</sup> यहाँ भी गाँधीवादी अविजित उत्तर देता है - "इस वक्त गाँधीजी ही ऐसे नेता हैं। हम लोग युवक मंडल अवश्य बनाएँ पर समझ-बूझकर कदम उठाएँ। गाँधी इरविन समझौते के अंतर्गत देखे क्या होता है?"<sup>134</sup> अविजित प्रस्तुत उपन्यास में गाँधीवादी, महाजनी संस्कृति से प्रभावित मौकापरस्त तो माना है। स्वतंत्रता के लिए पूर्णतः समर्पित अविजित आज़ादी के बाद सुविधापरस्त बन जाता है।

मृदुला गर्ग के 'अनित्य' के सन्दर्भ में कई आलोचकों ने गाँधी की समझौतावादी नीति की कड़ी आलोचना की है। डॉ. विवेकीराय के शब्दों में - "अनित्य में गाँधी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन और भगतसिंह के आतंकवादी, क्रान्तीकारी आन्दोलन को आमने-सामने रखकर विगत पचासवर्षों के हत्रासोन्मुख समाज की कहानी अत्यन्त सघन, सटीक, प्रतीकात्मक उपन्यास शिल्प में प्रस्तुत की है। भारतीय स्वराज्य के भटक जाने तथा प्राप्ति के साथ रुग्ण हो जाने का तथ्य तो सर्वविदित है, परन्तु इतिहास की गहराई में छिपे राष्ट्रीय स्थिति के ठीक-ठाक उस बिन्दु का अन्वेषण जब स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी भटक कर चूक जाते हैं, इस कृति की अंतरंग सार्थकता है।"<sup>135</sup> गाँधीजी बहुत बड़े समाजवादी थे। गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव कुछ लोगों पर पड़ा तो कुछ विरोधी भी थे। महात्मागाँधी अपने आपको जनसेवक मानते थे इसलिए गरीब एवं किसानों की वृद्धि के लिए कुटीर उद्योग एवं लघु उद्योगों की योजना बनाकर गरीबी एवं भूख से साधारण जनता की रक्षा करना चाहते थे। लेकिन कुछ लोग इसे भी ढोंगी मानते थे। गाँधीजी के आदर्श को ढोंगी मानकर अनित्य ने बताया - "गरीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीज़ें हैं। जानबूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लेंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मज़बूर होना दूसरी बात है। फिर यह बतलाइये, कितने किसान गरीब हैं, जो दूध, फल और बादाम खा पाते हैं।"<sup>136</sup> गाँधीजी के आदर्शों को न माननेवाले लोग कैसे शान्तिपूर्ण ज़िन्दगी हासिल करें?

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम्' में गाँधीवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति है। समकालीन सन्दर्भों में कहें तो यह गाँधीवाद और मार्क्सवाद, पूँजीवाद और वैज्ञानिक समाजवाद के बीच का अंतर्विरोध है। लेखिका ने आदर्शवाद और गाँधीवाद का रास्ता चुना है। पूरी ईमानदारी और



सम्पृक्तता के साथ कई एक प्रतिबद्ध रिब्यूकारों में मैत्रेयीपुष्पा के 'इदन्नमम' की विचारधारा को गाँधीवाद से जोड़कर छिटपुट सवाल भी खड़े किए हैं। "उनकी निगाह मन्दा और ठेकेदार अभिलाषसिंह की कठिन भिडतों और सगुना के हिंसक - प्रतिकारों की ओर नहीं जा सकी। न जाने क्यों वे यह नहीं महसूस कर सके कि मन्दा ने जो रास्ता अख्तियार किया है, वह हमेशा ही जनान्दोलनों के ज़रिए लोक जागरण और लोकमुक्ति का रास्ता है। वहाँ ज़रूरी हिंसा वर्जित नहीं है। आज़ादी के पहले और बाद के दो बड़े ऐतिहासिक जनान्दोलनों ने यह भी साबित कर दिखाया है कि गाँधी के विचार न हवाई है, न उनकी सार्थकता नष्ट हुई है, न वे पूरी तरह से नेस्तताबूद हुए हैं।"<sup>137</sup> यहाँ गाँधीवाद के प्रति आशावादी दृष्टिकोण अभी सशक्त हो कायम रहता है।

महात्मागाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता के पूर्व जो अहिंसात्मक लड़ाई चल रही थी उसके विरुद्ध क्रान्तिकारी दलों का उदय हुआ। भगतसिंह ऐसे क्रान्तिकारी थे। जब गाँधीजी ने इरविन के साथ जो समझौता किया उससे सत्याग्रही लोगों को मुक्ति मिली लेकिन भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव आदि फाँसी के शिकार बन गए। इसके विरुद्ध जनता का आक्रोश भी चल रहा।

मृदुला गर्ग ने 'अनित्य' में आज़ादी की लड़ाई के कालखण्ड को बहुत ही सघे हुए तरीके से उठाया है। इस उपन्यास की राजनीतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामविनोद सिंह का कथन है - 'अनित्य' में राजनीतिक जीवन की अवहेलना और पूजाभाव को अलग से समायोजित किया गया है। इस उपन्यास ने एक बड़ी ही तलस्पर्शी समस्या को उठाया है। स्वतंत्रता आन्दोलन में अहिंसात्मक राजनीतिक विचारधारा के समक्ष हिंसावादी शक्तियों का संघर्ष ही चल रहा था। इनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति का था। इन शक्तियों को आज़ादी के बाद आतंकवादी कहकर उपेक्षित किया गया केवल अहिंसात्मक राजनीतिक जीवन का अभिषेक हुआ। इस विषय के ब्याज से मृदुला गर्ग ने भारतीय राजनीतिक की सुविधाभोगी और जनतंत्र विरोधी मानसिकता को व्यक्त करने में सफलता पाई है।"<sup>138</sup> प्रस्तुत उपन्यास में गाँधी की अहिंसा नीति और भगतसिंह की आतंकवादी क्रान्तिकारिता की स्पष्ट चर्चा करते हुए विगत पचासवर्षों की राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश किया गया है।

मृदुला जी ने गाँधीजी की अहिंसा के विरुद्ध भगतसिंह की क्रान्ति की प्रशंसा की है। गाँधीजी की नीतियों का विश्लेषण करते हुए श्रीमति गर्ग एक स्थान पर लिखती हैं - "गाँधीजी अच्छी तरह जानते थे कि ब्रिटीश सरकार चूँकि पूँजीवादी सरकार है इसलिए समझौते से जब भी

वह सत्ता छोड़ेगी तो उसे किसी पूँजीवादी राजनीतिक दल को ही देगी क्योंकि वे बलपूर्वक सत्ता लेने को असंभव मानते थे इसलिए समझौते से सत्ता लेने का विकल्प ही उनके सामने था। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूँजीवाद से भी निपट लेंगे और यहीं वे मान खा गए। स्वतंत्रता मिलने के बाद हमारे देश से पूँजीवाद और अवसरवाद की जड़ें उखड़ी नहीं और भी गहरी हो गई।”<sup>139</sup> भगतसिंह कितना आदर्शवान व्यक्ति थे। लेकिन बुजुर्ग पर पहचान भी नहीं। यही मृदुला जी की शिकायत है।

आज़ादी के बाद भगतसिंह की आवश्यकता का अनुभव करते हुए गाँधीवादी अविजित सोचता है - “अगर भगतसिंह कुछ दिन और ज़िन्दा रहे होते और युवावर्ग का नेतृत्व कर पाते तो शायद 1932 से 1942 तक के वे दस साल समझौते की नज़र न होने और देश के युवक अपने को बुरी तरह दुविधाग्रस्त न पाते। तब शायद आज़ादी कुछ ठोस अर्थ लिए आती।”<sup>140</sup> गाँधीवादी अविजित के मन में भी विद्रोहात्मक भावना जाग उठी क्योंकि क्रान्ति केवल नृशंसन के लिए नहीं बल्कि प्रगती के लिए भी है।

देश के स्वतंत्र होने के बाद भी ‘युवासंघ’ का आन्दोलन चल रहा था। मृदुला गर्ग के ‘वंशज’ उपन्यास में भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रवर्तन का चित्रण है। उसमें शुक्ला साहब जो अंग्रेज़ी शासन के वफादार अफसर थे, उनका पुत्र सुधीर भी उनके साथ था। सुधीर की तरह कितनी ही कच्ची उम्र के नौजवान और बच्चे स्वयं सेवक संघ की सभाओं में शामिल हुए थे। “भाषणों में आमतौर पर हिन्दू साम्राज्य का गुणागान होता था। छत्रपति शिवजी के गुणों की स्मृति से शुरू होकर वे मुसलमानों की निन्दा पर उतरते तो जल्दी ही वर्तमान में आकर पाकिस्तान से आ रहे, शरणार्थियों का हवाला देकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के ही नहीं, मुसलमान प्रेमियों के विरुद्ध भी भड़काते। घृणा की लपेट में तमाम लीडर आ जाते। महात्मागाँधी तो प्रमुख लक्ष्य होते ही।”<sup>141</sup> यह संघपरिवार हिन्दू युवा लोगों का संघ था जो तत्कालीन समस्याओं के प्रति विद्रोहात्मक जागरण करना चाहता था।

युवा वर्ग देश का एक ऐसा निकष होता है, जिसमें हम समाज एवं देश के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को एक साथ देख सकते हैं। युवा वर्ग वर्तमान में जीता है और भविष्य की योजनाएँ भी बनाता है। किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए वे सदा तत्पर हैं। लेकिन “आज का युवा आक्रोश, युवा विद्रोह, दूसरी ओर राजनीति के अजीब कुचक्र में गिरफ्तार है। वह

जो कुछ चाहता है पूरा नहीं हो पाता और जो करना चाहता है, उसे करने नहीं दिया जाता है। एक दिशाहारा की भाँति वह राजनीतिज्ञों के हाथ कठपुतली बना नाच रहा है। बेकारी और बेरोज़गारी ने उसकी तलखी को बढ़ा दिया है क्योंकि उसमें चिन्तन और व्यवहार का संगठन नहीं है, इसलिए उसकी आवाज़ सतही सन-झुन करके चुप रह जाती है।”<sup>142</sup> महिला लेखिकाओं ने राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध युवावर्ग को जगाकर क्रान्ति का बगुल बजाने की कोशिश की है।

### 3.2.3 राजनीति में सांप्रदायिकता एवं जातिवाद

वर्गीय एवं धार्मिक विचार-धाराओं से प्रभावित होकर भारत की राजनीति में और भी उथल-पुथल हुई। सांप्रदायिकता या जातिवाद की समस्या ने बहुत विकराल रूप धारण कर लिया है। अंग्रेज़ी शासन की कुत्सित बुद्धि का परिणाम था कि हिन्दु एवं मुसलमानों के बीच की सांप्रदायिक झगडा। भारत-पाक विभाजन भारतीय धरातल पर होनेवाली बड़ी त्रासदी थी। जिसने लाखों लोगों को भावनात्मक, विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक और आत्मिक स्तरों पर प्रभावित किया था।

भारत-पाक विभाजन ने एक संस्कृति, एक भाषा, एक भाईचारे के रिश्ते-नातों को दो राष्ट्रों के रूप में अलग कर दिया। “इतना बड़ा नर-संहार, संभव है, पहले भी कभी हुआ हो, पर परस्पर मिल-जुलकर रहनेवाली एक ही संस्कृति में पली-ढली, समान भाषाएँ बोलनेवाली एक-से जातीय भावों में बन्धी जातियों का देशान्तरण, हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों का सांप्रदायिक आग की लपटों में झुलसते हुए स्वदेश त्याग, विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। इस तरह की ट्रेजडी, इतने बड़े पैमाने पर विश्व में पहले कभी घटित नहीं हुई थी।”<sup>143</sup> समकालीन महिला उपन्यासकारों ने इस मानवीय ट्रेजडी के दुष्प्रभाव को रेखांकित किया है।

नासिरा शर्मा ने देश विभाजन की भीषण त्रासदियों और कुरूपताओं को अपने उपन्यासों में बहुत ही सामाजिक ढंग से चित्रित किया है। उनके ‘ज़िन्दा मुहावरे’ उपन्यास की पृष्ठभूमि बँटवारे के बाद का भारत-पाक समाज है। इसमें नासिरा शर्मा इस सच्चाई को सामने लायी है कि “आज दोनों देशों में रहनेवाली अधेड और जवान होती नस्ले बँटवारे जैसी ऐतिहासिक घटना की चरमदीद गवाह नहीं है मगर उसकी अनुगूँज न किए गए गुनाह की प्रताडना ने बचपन से उनका पीछा करती उनके दिल व दिमाग पर कटाक्ष के रूप में कोड़े बरसाती के आत्मग्लानि के सरोवर

में गर्दन तक डुबोती रहती है।”<sup>144</sup> भारत-पाक विभाजन ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो खाई खोदी है उसने तो हिन्दू-मुस्लिम जनमानस पर बहुत ही कडवा असर छोड़ा है। यहाँ उपन्यासकार का सवाल है “पता नहीं पाकिस्तान के नाम पर इधरवाले और हिन्दुस्तान के नाम पर उधरवाले जज्बानी क्यों हो जाते हैं। रियासत से निकली इस हकीकत को कुबूल करने की आदत हमें डालनी है। वह हमारा पड़ोसी मुल्क है। यूँ तो ब्रिटीश इंडिया में वर्मा, श्रीलंका, अफगानिस्तान भी शामिल था, उसके जुदा होने को तो हम इतना अपने ऊपर हावी नहीं किये हैं।”<sup>145</sup> नासिरा शर्मा ने रहीम उद्दीन के छोटे से परिवार के व्याज से उस ऐतिहासिक हादसे के कद्दावर को कलमबद्ध किया है। ‘यह सच एक घर का सच नहीं है बल्कि करोड़ों इन्सानों की रूहों का सामूहिक क्रन्दन है।’ निज़ाम की अपनी सोच है - “युवा मन की बेलगाम सोच जो किसी खुशफहमी का शिकार नहीं है। बरसों रहने के बाद आज ढाक के वही तीन पात? बंटवारे के बाद हमारी है सियन?”<sup>146</sup> यहाँ बंटवारे के बाद मानव मानव की दर्दनाक एवं पीडाजनक मनोदशा का व्यापार लेखिका ने यहाँ खुल्लम खुल्ला दिखाया है।

भारत के विभाजन की स्थिति और मुस्लीमलीग के संदर्भ में ‘निरुपमासेवती’ ने अपने ‘दहकन के पार’ उपन्यास में ऐसा लिखा है “विभाजन के मारे हुए उनके विषम में कुछ नहीं कहा और ये सांप्रदायिक द्वन्द्व। देश के तल से लेकर मोहल्ले के तल तक चलनेवाले ऐसे युद्ध भी क्या ही मिटेंगे, जब तक चेतनागत क्रान्ति न होगी, शेर वह कैसे हो? जबकि परिस्थिति ऐसी विसंगति से भरी हो कि लेबल जड़े हो - धर्मनिरपेक्ष राज्यों के था कि लोकतांत्रिक के नियम धाराएँ अलग-अलग चले जाति के हिसाब से धर्म के हिसाब से।”<sup>147</sup> ‘भारत विभाजन’ के दुष्परिणामों का उल्लेख निरुपमा सेवती ने किया है। भारत स्वतंत्र होने पर भी सांप्रदायिकता की जड़ें अधिक चूर कर खड़ी रहती है।

सांप्रदायिकता का विष-बीज राजनीति द्वारा किस तरह बोया जाता है उसका उदाहरण मैत्रेयी पुष्पा जी के ‘चाक’ उपन्यास में भी हम देख सकते हैं। जिसमें एक कुटिल राजनीतिज्ञ मुसलमानों को कुछ इस तरह समझा रहा है - “यह नहीं देखते कि पीढ़ी दर पीढ़ी निकलती चली जा रही है, और तुम्हारी दर कुत्ते से भी बदतर होती जा रही है। नमाज़ पढ़ने की जगह तक नहीं जुटी। यहाँ मन्दिर दो-दो हैं, मस्जिद एक भी नहीं। शिवाजी और दुर्गा मइया रहेंगी, खुदा नहीं। मैं कहता हूँ क्यों नहीं?”<sup>148</sup> चित्रा मुद्गल जी अपने ‘आवाँ’ उपन्यास में समाज को उद्बुद्ध करते हुए

कहती हैं - “सांप्रदायिक उन्माद को खत्म करने की लड़ाई लड़ें, बरना सब बरबाद हो जायेगा। खोली-खोली के भीतर घुसकर हिन्दू-मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों में उन्मादी मर्दों के हाथों से उनकी कटारें छीन लें।”<sup>149</sup> वास्तव में सांप्रदायिकता का आधार घृणा है इसे अंग्रेज़ इतिहासकारों ने कुछ गलत और अप्रासंगिक गढ़े हुए तथ्यों से निर्मित किया है।

‘वंशज’ में मृदुलागर्ग अपने पात्र से कहलाती है - “आज़ादी के बाद अपने मुसलमान दोस्तों के पाकिस्तान चले जाने पर जब शुक्ला साहब शोक प्रकट करते हैं तब सुधीर को उन्हें यहाँ से भगा दिया जाना न्याय संगत लगता है।”<sup>150</sup> हिन्दू सांप्रदायिकता पर इशारा देकर उसने कहा कि “कबख्त ये संधी। देश को तबाह करके छोड़ेंगे। नौजवानों को उल्टी सीधी शिक्षा देकर आवारा और क्रूर बना देंगे।... क्या है इनकी सिंहगढ़ विजय? किसी निहत्थे मुसलमान का गला दबा देना बस।”<sup>151</sup> उसी प्रकार ‘मैं और मैं’ उपन्यास में भी एक पात्र का मत है - “नहीं वह कुरूप नहीं था, बस हमें सिखाया गया था कि हर मुसलमान आदमी कुरूप है और इसलिए उसे नष्ट कर देना चाहिए। हिन्दू मुसलमान दंगों के दौरान मैं ने उसे कत्ल कर दिया।”<sup>152</sup> हिन्दू-मुसलमान सांप्रदायिक दंगे का असली चेहरा यहाँ देख सकते हैं।

सरकार ने निम्नजातियों की मदद के लिए आरक्षण नीति अपनाई। लेकिन इसने धार्मिक विघटन को अधिक जटिल बना दिया। इस आरक्षण की राजनीति के संदर्भ में कृष्णा अग्निहोत्री ‘अभिषेक’ में लिखती है - “क्या हरिजनों की बात महज एक राष्ट्र-प्रगति में गाँठ या फोड़ा जैसी नहीं बना दी जा रही। प्रत्येक उन्नति के रास्ते पर बढ़ने के लिए सहूलियत दी जा रही। इस तबके को भी सुभीते दो, खुद उन्हें स्वयं आगे आने के लिए चलने तो दो.... वरना जिन्हें हरिजन होने के नाते गद्दी पर बिठा दंगे।”<sup>153</sup> राजनीतिक मुद्दा के रूप में ‘आज आरक्षण’ जारी रहा है। कोई राजनीतिक दल इसके विरोधी नहीं है। इस संबन्ध में कृष्णा अग्निहोत्री आगे लिखती हैं - “माँ को मना करता हूँ.... मानती नहीं। उनसे कैसे सर फोड़े कि ये गाँधीजी के जमाने के सताये, उपेक्षित अस्पृश्य नहीं.... स्वतंत्रता बाद के आचार विहीन असभ्य आरक्षण पाये अनुसूचित जाति के हरिजन हैं। जिन्हें केवल अवसरवादी और लाभांश की बात समझ में आयी है। काम, उन्नति वे नहीं जानते। कभी-भी तो व्यवस्था के इतने प्रयत्न देख लगता है कि लोग सोचते हैं जैसे दूसरों की गरज है जो उन्हें उन्नत करे वे स्वयं लकीर के फकीर ही रहेंगे।”<sup>154</sup>

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' भी दलित वर्गों की जीवनी पर आधारित है। लेखिका ने यहाँ निम्न जाति को उपेक्षा का परिवेश देनेवाली 'आरक्षण' नीति की निन्दा की है। उपन्यास में निम्नजाति का पात्र भृंगु देव अनुसूचित जाति का प्रखर नवयुवक है, जिसकी सामान्य प्रतियोगिता में बिना आरक्षण के अपनी काबिलियत पर मेडिकल कॉलेज में भर्ती होती है, पर उपेक्षा, ईर्ष्या, द्वेष, कुंठाएँ पनपने के कारण उसने कॉलेज छोड़ा। वह मन्दा को लिखता है - "यह तो निश्चित है जब तक आरक्षण रहेगा, हमारी जातियों को उपेक्षा सहनी पड़ेगी और कुंठाएँ झेलनी पड़ेंगी। काश वह दिन आए कि अनुसूचित जातियों के छात्र आगे बढ़े और अस्वीकार कर दें आरक्षण की बैसाखी को।"<sup>155</sup> आरक्षण करके अपने सम्मानित जीवन को निम्न स्तर में गिराने की इस कूट-नीति को वह निन्दा की दृष्टि से देखता है। मैत्रेयी जी आरक्षण को वोटों का व्यापार मानती हुई उपेक्षा करती हैं कि अनुसूचित जाति के युवा स्वयं आगे बढ़कर इस बैसाखी को अस्वीकार कर देंगे।

मैत्रेयीपुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' में भी जातिवाद का चित्रण है। यहाँ डाकू श्रीरामशास्त्री मंत्री बन गया। लेकिन राजनीतिक कूटनीति के परिणामस्वरूप उनकी हत्या हो गयी। लेखिका यहाँ लिखती है - "कौन कहता है बेटासिंह मारा गया? मरा तो उसका डूलीकेट था। सरकार ने मुनादी कर दी थी कि डाकू का हमशक्ल भी मार लाओ तो इनाम मिलेगा। अच्छा तो यह बात है। वह ही सीट पर कब्जा करना चाहता होगा। डाकुओं की सुरक्षित सीटें हो गई हैं शायद। आरक्षण आ गया है। सबके हक का मामला है। यह भी मुमकिन है। सताए हुए बहिष्कृत लोगों में डाकू तो सबसे पहले आते हैं। चलो यह सहूलियत अच्छी हुई, शायद इसी से जुल्म की दुनिया में बदलाव आ जाएँ। आएगा ज़रूर, मगर आएगा डाकू बनने के बाद ही। बदलाव की कहानी विद्रोह से ही तो शुरू होती है। यहाँ लेखिका स्पष्ट रूप से लिखती है कि 'डाकू' भी उम्मीदवार बनने योग्य है एवं उन्हें भी आरक्षण है, क्योंकि वह निम्नजाति है।"<sup>156</sup>

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था बिल्कुल धार्मिक विभाजन के आधार पर है। चुनाव के समय राजनेता वोट हासिल करने के लिए 'धर्म' को हथियार मानता है। आज हर जाति अपने को ऊँचा महसूस करके चुनौती देकर आता है। जो संगठित धार्मिक स्थिति पहले मौजूद थी वह अब नष्ट हो चुकी है। राष्ट्रीय नेता लोग इस विघटन से अधिक लाभ जमा लेते हैं। मालती परुलकर के शब्दों में - 'स्पृश्य-अस्पृश्यों का विवाद भी सामाजिक न्याय, करुणा या यथार्थता की अपेक्षा

राजकीय स्वार्थ में पला हुआ, जान बूझकर पनपाया गया है। सच कहूँ तो मुझे अस्पृश्यता एक सामाजिक, सांस्कृतिक विकृति लगती है। इस विकृति की जड़ स्पृश्यों में ही है, ऐसा नहीं। हम अस्पृश्य भी इन जड़ों को पालते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उसपर गर्व करते हैं।”<sup>157</sup> निरुपमासेवती के ‘दहकन के पार’ में ‘असलम’ बताते हैं कि “रिलीजन के लिए लडना-झगडना, ये सब हीन ग्रन्थियाँ होती हैं। असली बात यह है कि इन्सान गुट बनाकर रहना चाहता है। बिलोंगिंग की सेंस उसके लिए ‘बेसिक नीड’ है.... बाद में यही नीड एक एंबीशन बन जाती है। वह गुट को भी प्रापर्टी समझने लगता है। उनमें से कोई एक इतना एंबीशियन होता है कि गुट को मजहब के नाम से ढाँपकर नेता बनकर अपना ‘ईगो’ पूरी तरह सेटिस्फाई कर लेता है। फिर उनकी बला से मजहब के नाम पर यूँ ही बिना किसी वजह राजनीतिक कारणों से ही झगडे होते रहें और बेकसूर लोग मारते रहे।”<sup>158</sup> राजनीतिक नेता केवल अपने ‘स्व’ की पूर्ती के लिए यह सब करवाने का परिश्रम करता रहता है।

‘अभिषेक’ उपन्यास में जानकी स्वातंत्र्य सेनानी की पत्नी है। उसके देश में फैले जातिवाद के संदर्भ में वह ऐसा बताती है - ‘राजनीति में मरे लोग क्या सुनेंगे... वे तो कुर्सियों पर भूत बन चिपके हैं और जो उधर बढा जातिवाद की आड़ ले वे उसकी गर्दन मरोड़ देंगे।’<sup>159</sup> नेतागण सामान्य जनता को अपनी स्वार्थ सिद्धि का माध्यम मानता है। उपन्यास का नायक पीयूष जिलाधीश है। एक हरिजन नेता उनसे कहते हैं कि, हर पार्टी की सरकार ने हमारे साथ अन्याय किया है, इसलिए जब तक हमारी अपनी सरकार नहीं बनती तब तक हमें न्याय नहीं मिलेगा। इस बात पर पीयूष कहता है - “तुम्हारी जातिवाले जो मंत्री बने तो वे कभी मुड़कर तुम्हारी बस्ती में झाँक तक नहीं, बस भाषण करके 40 वर्षों से ‘हरिजन’ के नाम पर मंत्री सुख भोग रहे हैं।”<sup>160</sup> केवल जाति के नाम पर वोट हासिल करनेवाले ये नेतागण विजयी बनने के बाद कभी उस बस्ती तक भी न देख पाते हैं। केवल भाषण की जादूई चाल में निम्न लोगों को फँसाकर उन्नत पद हासिल करना ही उनका तरीका है।

ग्रामीण समाज का सबसे बड़ा यथार्थ जातिवाद ही होता है। मैत्रेयी जी ने ‘चाक’ में इस सत्य को शब्दबद्ध किया है - “गाँव में आज़ादी के दस वर्ष बाद तक जातिविधान अपने-अपने कर्मविधान से जुड़ा रहा। मसलन चमारों ने मरे पशु डाले जूते बनाये, तेलियों ने कोल्हू चलाया, गडेरियों ने भेडे पाल कर ऊन और दूध दिया। कुम्हारों ने घडे, दोहनी, शकोरे देकर किसानों की

पूर्ति की, नार्डियों ने सेवा-टहल हजामत, दौना पत्तल और बुर्लाव का काम सन्हाला शक्का लोग द्वारों पर मशकों से छिड़काव करते थे, और छोटी जातिवाले किसान साग सब्जी उगाकर इन लोगों की ज़रूरत पूरी कर दिया करते थे।<sup>161</sup> जातिविभाजन भी कर्म के आधार पर था।

सांप्रदायिकता वास्तव में एक विषैला कीटाणु है जो समाज में फैलकर भारतीय सांस्कारिकता की जड़ें भी हिला देती है। हिन्दू-मुस्लिम धर्म के बीच की खाई अधिक विषैली और गन्दगी बन जाती है। इस संबन्ध में 'अभिषेक' में कृष्णा अग्निहोत्री की राय है - "वास्तव में यह वही पुराना हिन्दू-मुस्लिम दंगा था, पर समाचार पत्रों में लिखा गया - 'कुछ चोरों को पकड़ने के कारण खून-खराबे की वारदात हो गयी, स्थिति सामान्य है।' प्रस्तुत उपन्यास में जावेद कहता है - "वैसे तो आप जानती है कि मुसलमानों का मध्यमवर्ग ज़्यादा पिछड़ा हुआ है, क्योंकि यहाँ फ्यूडल एलीटमेंट ज़्यादा प्रभाव रखता है और पिछड़े वर्ग की हीन ग्रन्थि अधिक खतरनाक होती है। झगड़े इन्सानी थे नाम दे दिया गया धर्म का।"<sup>162</sup> वास्तव में सांप्रदायिकता का विषैला वातावरण भारतीय देश को दमघुट अवस्था में छोड़ा रहता है।

### 3.2.4 राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का स्थान

वर्तमान समाज में स्त्री-शक्ति सभी क्षेत्रों में लागू होती है। राजनैतिक क्षेत्र में भी श्रीमति इन्दिरागाँधी जैसी महिलाओं ने अपनी कार्यकुशलता एवं राजनीतिक क्षमता दिखायी थी। "जब स्वतंत्रता प्राप्त की गई तब भारत की राजनीति और सामाजिक जीवन में स्त्रियों ने जो स्थान प्राप्त किया, उसे देखकर बाहरी दुनिया आश्चर्य में पड़ गई क्योंकि वह तो यह सोचने को अभ्यस्त थी कि हिन्दू स्त्रियाँ पिछड़ी हुई अशिक्षित और प्रक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई हैं। भारत में जो महान परिवर्तन हुआ उसकी पहली सीढ़ी यह थी कि भारतीय महिलाओं ने राज्यपालों, केबिनेट स्तर के मंत्रियों और राजदूतों के रूप में यश प्राप्त किया।"<sup>163</sup> स्त्रीयाँ राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भाग लेने पर भी पुरुषवर्ग ने पूर्णरूप से सहमति न दे दी है।

आज राजनीतिक व्यवस्था अधिक धुँधलापूर्ण एवं अनैतिकता के रास्ते की ओर चल रही है। सब कहीं भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, क्रूरता एवं विध्वंस का बोलबाला है। हमारी महिला उपन्यासकारों ने इस सन्दर्भ में विचार करते हुए देखा है कि पारंपरिक सद्भावना, कर्तव्यनिर्वाह, जीवन में आस्था एवं सतत् प्रयत्न से ही समाजोत्थान संभव है। उन्होंने अपने उपन्यासों में राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी एवं उनकी विडंबनाओं का सटीक वर्णन किया।



मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में सारंगनैनी अपने पति का मत न मानकर चुनाव में शामिल हुई। इसके घर की विधवा रेशम की हत्या सास द्वारा हुई। लेकिन इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए ससुरालवाले तैयार नहीं थे। इस लड़ाई में सारंग खुद लड़ने लगी। उसे कई समस्याएँ भी झेलनी पड़ीं। राजनीतिक शक्ति का प्रभाव समझकर उसने राजनीतिक चुनाव में भाग लेने का निर्णय किया। हमारे समाज में स्त्री को स्वयं निर्णय लेने का अधिकार भी नहीं है। अरविन्द जैन लिखते हैं - "समाज व राजसत्ता के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति 'न' के बराबर है। निर्णय लेने के प्रायः सभी मुख्य केन्द्रों पर मर्दों का सर्वाधिकार सुरक्षित है, जिसकी वजह से स्त्री के हिस्से में सिर्फ एक अन्धेरा कोना ही बचा रहा गया है।"<sup>164</sup> पुरुषसत्तात्मक समाज में पुरुष ही अपना वर्चस्व मानकर स्त्री को दबाया ही रखता है।

ग्रामीण समाज के धरातल पर ही मैत्रेयी जी ने 'चाक' उपन्यास की रचना की है। यहाँ नारी ने पुरुष प्रधान व्यवस्था को टक्कर दी है और परंपरागत रूढ़ियों और मान्यताओं को ठोकर मारकर वे वर्तमान संदर्भ में सोचती हैं। परिवार के पिंजड़े से बाहर आने पर समाज स्त्री को दोषी बनाता है। तसलीमा नसरीन इसके बारे में सही कहती है, "यह भी पुरुष तंत्र का एक कौशल है कि जो स्त्री पिंजड़ा तोड़कर बाहर आती है उसे अश्लीलता का दोषी ठहराया जाये। जिससे उसे सामाजिक बहिष्कार का शिकार होना पड़े मानो किसी भी स्त्री के लिए पारिवारिक पिंजड़ा ही उसका परम आराध्य है।"<sup>165</sup> मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' उपन्यास में जीवन के आधुनिकतम प्रश्नों की मीमांसा ग्रामीण जीवन में की है। उनकी राय में - 'चाक' न तो राजनैतिक उपन्यास है, न समाजशास्त्रीय मगर उस समाज की रोचक या भयावह कथा है जो इन दोनों से अछूती नहीं है।"<sup>166</sup> ग्रामीण समाज में एक स्त्री को पुरुष के मदद के बिना जीना मुश्किल है। सारंगनैनी को चुनाव में खड़े रहने का निर्णय श्रीधर की सहमति से ही संभव हुआ। वह सारंग से पूछता है - "यह बताओ जब घर परिवार में औरत का दखल हो सकता है, तो राजकाज में क्यों नहीं? तुम पढी लिखी हो, खूब जानती हो, हमारे संविधान में औरत को बराबरी का दर्जा मिला है। तुम कब तक औरत को पत्नी होने की दुहाई देती रहोगी? मैं निमित्त बनूँगा तुम्हारे खड़े होने का। भले कितना भी रोको।"<sup>167</sup> पति की सहमति न होने के कारण ही अन्य पुरुष की सहायता सारंगनैनी को लेनी पड़ी।

'इदन्नमम' में टीकमसिंह जो ग्राम के प्रधानी थे, निरक्षर होने पर भी दूसरों से पढवाकर सारे समाचार सुनते और उन्होंने किसानों को सरकार के विरुद्ध संगठित किया। क्षेत्र की विधायक

उस समय एक महिला थी। उन्हीं के पास पहुँचकर टीकमसिंह बोले, “हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारी विधायक स्त्री है। माँ और शक्ति रूपा स्त्री बेईमान नहीं होती। भ्रष्ट नहीं होती। अन्याय नहीं करती। जिस प्रकार पुरुष ओछी और स्वार्थपरक चालाकियाँ करता है, औरत नहीं करती। माँ सन्तान को धोखा नहीं देती, बस इस आत्म-विश्वास पर आए हैं आपके पास।”<sup>168</sup> यहाँ राजनीति पर महिला की श्रेष्ठता एवं विश्वास की आवाज़ निहित है।

‘इदन्नमम’ उपन्यास में मैत्रेयी जी ने मन्दाकिनी के द्वारा स्त्री शक्ति की घोषणा की है। गाँव में अस्पताल खुलने एवं डॉक्टरों को न लाने पर मन्दाकिनी ने गाँव निवासियों को इकट्ठा कर वोट न देने का फैसला किया। राजनेता लोग भी भयभीत हुए। ‘जनता से भारी नहीं होता राजतंत्र’ मन्दाकिनी ऐसी वाणी पर अटल रही। जब गाँव में वोट डालने, कोई नहीं जाता तो अधिकारियों में एक का कहना है - ‘इनके नाम के वोट हम मोहर ठोककर अभी भरते हैं पेटियों में।’<sup>169</sup> तब उन्हीं का एक साथी सचेत करता है “ऐसा गज़ब न कर देना राम सजीवन। यहाँ पर कोई मन्दाकिनी नाम की लड़की है। महाकाली समझो। चुनाव कमीशनर से लेकर उरई के अखबारों तक में पहुँच दी है उसके खबर की। हम वोटों का बहिष्कार करेंगे।”<sup>170</sup> राजनीति में अन्याय के प्रति लड़ने के लिए महिला की वाणी की ज़ोर यहाँ सुन सकते हैं। मन्दा का फैसला सुनकर वे महाराज से बोले “कैसी जहरीली हैसी है लड़की की। कमाल है, गाँव-गाँव नेता हुए जा रहे हैं लोग। पुरुष तो इस लड़की की खिन्नत। न कुछ उम्र में कैसी ऊँची-ऊँची बातें करती है।”<sup>171</sup> राजनीति में महिला का प्रभाव यहाँ दृष्टव्य है।

राजनीति के क्षेत्र में स्त्री वर्जित थी। नारी अब अपनी सत्ता से जागरूक होकर तत्कालीन व्यवस्था के प्रति विद्रोही बन जाती है। चित्रा मुद्गल का स्पष्ट मत है - “औरत बोनसाय का पौधा नहीं है, जब जी चाहा उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमले में रोप लिया। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश का अस्वीकार भी तो कर सकती है।”<sup>172</sup> औरत की क्षमता एवं शक्ति की ओर लेखिका ने इशारा किया है।

मैत्रेयी पुष्पा जी के ‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में अल्मा अनेक यातनाएँ सहकर अन्त में सूरजभान के धोखे में पड़कर मंत्री श्रीरामशास्त्री के चंगुल में आयी। श्रीरामशास्त्री अल्मा को प्रथम तो मात्र ‘भोग्या’ के रूप में देखते हैं। लेकिन आगे प्रचारकार्य में उसकी सहायता प्राप्त करते हैं। वोटों को ध्यान में रखकर वे उसके साथ विवाह कर लेते हैं। अल्मा भी मौके का फायदा उठाकर

उन्हें हर कार्य के लिए अपना मोहताज करती है। “अल्मा परामर्श में मंत्री-सी और सेवा में दासी-सी खिलाने-पिलाने में माता-सी सेज पर रंभा-सी। श्रीरामशास्त्री के यहाँ का हर तौर-तरीका अल्मा के सलीके का मोहताज हो उठा।”<sup>173</sup> प्रचार कार्य में गोलियों से श्रीरामशास्त्री की हत्या हो जाती है। श्रीरामशास्त्री की चिता को अल्मा ने भी आग लगा दिया। श्रीरामशास्त्री की मृत्यु के पश्चात् राजनीतिक मोड़ आता है। बबीना विधानसभा की खाली सीट के लिए अल्मा का नाम तय किया जाता है। “श्रीरामशास्त्री के निधन के कारण बबीना विधानसभा की जो सीट खाली हुई है, उसके लिए प्रत्याशी श्रीमती अल्मा कबूतरी होगी।”<sup>174</sup> राजनीति, प्रशासन और अपराध के मिले-जुले रूप को अल्मा स्वीकार करती है और अपनी देह सोंपती तथा परिजनों के शवों पर पैर रखती हुई सत्ता की सीढियाँ चढ़ती है। मैत्रेयी की नारियाँ शासन वर्ग के स्तर पर आकर अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाना चाहती हैं। कान्ति कुमार लिखते हैं, “मैत्रेयी पुष्पा गाँव की औरतों के तन, मन और मनोविज्ञान की अच्छी जानकार है। उन्हें पुरुषों की प्रतिस्पर्धा में खड़ा होना पड़ रहा है।”<sup>175</sup> स्वावलंबी नारी आज राजनैतिक क्षेत्र में भी अपनी क्षमता दिखाती रही है।

### संदर्भ

1. मेहरुत्रिसा परवेज़ - अकेला पलाश - पृ. 50
2. डॉ. शशि जेकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता - पृ. 110
3. डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण - पृ. 218
4. डॉ. वंशीधर - मनु भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य - पृ. 63
5. डॉ. शील प्रभावर्मा - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - पृ. 206
6. मेहरुत्रिसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 121
7. शशिप्रभा शास्त्री - सीढियाँ - पृ. 22
8. सिम्मी हर्षिता - रंगशाला - पृ. 8
9. वही - पृ. 8
10. प्रभाखेतान - पीली आँधी - पृ. 103
11. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 65
12. वही - पृ. 25
13. वही - पृ. 26

14. मालती जोशी - सहचारिणी - पृ. 54
15. वही - पृ. 56
16. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि - पृ. 120
17. मालती जोशी - ज्वालामुखी के गर्भ में - पृ. 97
18. रजनी पनिकर - बदलते रंग - पृ. 50
19. वही - पृ. 50
20. डॉ. नीहार गीते - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप - पृ. 95
21. कृष्णा अग्निहोत्री - टेसु की टहनियाँ - पृ. 45
22. दीप्ती खण्डेलवाल - कोहरे - पृ. 95
23. निरुपमा सेवती - बँटता हुआ आदमी - पृ. 79
24. ममता कालिया - नरक-दर-नरक - पृ. 48
25. ममता कालिया - प्रेम कहानी - पृ. 57
26. वही - पृ. 58
27. दीप्ती खण्डेलवाल - प्रतिध्वनियाँ - पृ. 38
28. कृष्णा सोबती - ए लड़की - पृ. 53
29. राजीसेठ - निष्कवच - पृ. 100
30. अजयवर्मा - उत्तर औपनिवेशक दौर में भारतीय जन, 'तद्भव' जनवरी, 2000 - पृ. 139
31. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 6
32. वही - पृ. 101
33. डॉ. रामविनय शर्मा - कथाक्रम - अप्रैल-जून 2000 - पृ. 106
34. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 15
35. वही - पृ. 82
36. मृदुला गर्ग - शहर के नाम (परिशिष्ट) - पृ. 105
37. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम् - पृ. 99
38. मैत्रेयी पुष्पा - तथ्य और सत्य - (सं.) दयादीक्षित - पृ. 18
39. राजेन्द्र प्रसाद पाण्डे - मुक्ति की आकांक्षा, आजकल मार्च 96
40. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 34-35
41. प्रभा खेतान - पीली आँधी - पृ. 35

42. जनेश्वर शर्मा - मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्त
43. मंजुल भगत - अनारो - पृ. 38-39
44. डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - पृ. 218
45. मृदुला गर्ग - चित्त कोब्रा - पृ. 58
46. स्नेहमोहनीश - कल के लिए - पृ. 107
47. कुसुम अंसल - तापसी - पृ. 59
48. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि - पृ. 83
49. मेहरुत्रिसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 122
50. वही - पृ. 94
51. कृष्णा अग्निहोत्री - नीलोफर - पृ. 59
52. मंजुल भगत - अनारो - पृ. 21-22
53. मेहरुत्रिसा परवेज़ - अकेला पलाश - पृ. 71-80
54. वही - पृ. 55
55. रजनी पनिकर - मोम की मोती - पृ. 123
56. मेहरुत्रिसा परवेज़ - अकेला पलाश - पृ. 48
57. वही - पृ. 62
58. नासिरा शर्मा - शाल्मली - पृ. 20
59. कुसुम अंसल - उसकी पंचवटी - पृ. 37
60. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 201
61. शशिप्रभा शास्त्री - नावें - पृ. 67
62. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 88
63. शुभावर्मा - फ्रीलान्सर - पृ. 124
64. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि - पृ. 51
65. मृदुला गर्ग - चित्तकोब्रा - पृ. 72
66. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 121
67. सिम्मी हर्षिता - रंगशाला - पृ. 12
68. प्रभाखेतान - पीली आँधी - पृ. 108
69. शशिप्रभा शास्त्री - मीनारें - पृ. 131

70. डॉ. गोपालकृष्ण अग्रवाल - भारतीय सामाजिक संस्थाएँ - पृ. 316
71. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि - पृ. 36
72. वही - पृ. 37
73. वही - पृ. 42
74. सिम्मी हर्षिता - यातनाशिविर - पृ. 32
75. निरुपमा सेवती - पतझड की आवाज़ें - पृ. 115-116
76. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 14
77. वही - पृ. 26
78. नासिरा शर्मा - शाल्मली - पृ. 101
79. प्रभा सक्सेना - टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष - पृ. 50
80. मृणाल पाण्डे - देवी - पृ. 72
81. कुसुम अंसल - तापसी - पृ. 60
82. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 24
83. मेहरुन्निसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 122
84. निरुपमा सेवती - बँटता हुआ आदमी - पृ. 101
85. कृष्णा अग्निहोत्री - टपरेवाले - पृ. 37
86. कृष्णा अग्निहोत्री - दिलो दानिश - पृ. 155
87. कुसुम अंसल - अपनी-अपनी यात्रा - पृ. 11
88. कृष्णा अग्निहोत्री - नीलोफर - पृ. 173
89. वही - पृ. 59
90. वही - पृ. 143
91. वही - पृ. 143
92. मधु भादुड़ी - ज्वार - पृ. 110
93. राजीसेठ - तत्सम - पृ. 84
94. प्रभा खेतान - पीली आँधी - पृ. 7
95. निरुपमा सेवती - मेरा नरक अपना है - पृ. 94
96. निरुपमा सेवती - पतझड की आवाज़ें - पृ. 116
97. वही - पृ. 118

98. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 120
99. वही - पृ. 120
100. रजनी पनिकर - दो लड़कियाँ - पृ. 110
101. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 105
102. मृदुला गर्ग - समीक्षा - पृ. 240
103. सिम्मी हर्षिता - संबन्धों के किनारे - पृ. 36
104. रजनी पनिकर - एक लड़की दो रूप - पृ. 105
105. शशिप्रभा शास्त्री - क्योंकि - पृ. 14
106. वही - पृ. 14
107. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 49
108. मेहरुन्निसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 70
109. डॉ. सुधाकर अदीब - हिन्दी उपन्यासों में प्रशासन - पृ. 126
110. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य - पृ. 15
111. ममता कालिया - व्यक्तित्व एवं कृतित्व - पृ. 197
112. ममता कालिया - प्रेम कहानी - पृ. 95
113. डॉ. शशि जेकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता - पृ. 81
114. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 283
115. डॉ. शशि जेकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता - पृ. 176
116. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 6
117. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 15
118. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 205
119. साहित्य प्रभा - जुलाई-सितंबर 2007 - पृ. 10
120. मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी - पृ. 351
121. डॉ. राधा गिरधारी - राजेन्द्र यादव के उपन्यास में व्यक्ति और समाज - पृ. 48
122. डॉ. सुब्राव नामदेव जाधव - रामदरश मिश्र के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ - पृ. 110
123. महाभोज - मन्नू भण्डारी - राधाकृष्ण प्रकाशन - पृ. 30
124. महाभोज - मन्नू भण्डारी - पृ. 31

125. मेहरुन्निसा परवेज़ - कोरजा - पृ. 65
126. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम् - पृ. 22
127. वही - पृ. 206
128. वही - पृ. 207
129. मैत्रेयी पुष्पा - तथ्य और सत्य - पृ. 50
130. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम् - पृ. 409
131. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 90
132. वही - पृ. 90
133. वही - पृ. 82
134. वही - पृ. 83
135. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 78
136. वही - पृ. 78
137. मैत्रेयी पुष्पा - तथ्य और सत्य सं. दयादीक्षित - पृ. 112
138. धर्मयुग-2 मार्च 1981 शहीद भगतसिंह और उपन्यास अनित्य एक आत्मकथ्य - मृदुला गर्ग के लेख से - पृ. 28
139. हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष - सं. रामदरश मिश्र के अंतर्गत डॉ. रामविनोद सिंह के लेख 'आठवें' दशक के हिन्दी उपन्यास - पृ. 15
140. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 79
141. वही - पृ. 34-35
142. डॉ. प्रदीप शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान - पृ. 88
143. नरेन्द्र मोहन - सिक्का बदल गया (संपा) भूमिका - पृ. 11
144. डॉ. तसलीन पटेल - समय के साक्षी - प्रमुख मुस्लिम उपन्यासकार - पृ. 112
145. नासिरा शर्मा - ज़िन्दा मुहावरे - पृ. 85
146. नासिराशर्मा - ज़िन्दा मुहावरे - पृ. 97
147. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 78
148. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 30
149. चित्रा मुद्गल - आवाँ - पृ. 112
150. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 19



151. वही - पृ. 34
152. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 52
153. अभिषेक - कृष्णा अग्निहोत्री - पृ. 202-203
154. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 164
155. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम् - पृ. 72
156. मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी - पृ. 256
157. मालती परूलकर - जहाँ पौ फटनेवाली - पृ. 158
158. निरुपमा सेवती - दहकन के पार - पृ. 29
159. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 182
160. वही - पृ. 189
161. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 25
162. कृष्णा अग्निहोत्री - अभिषेक - पृ. 87
163. डॉ. के. पनिक्कर - भारतीय नारी - पृ. 36
164. अरविन्द जैन - औरत, अस्तित्व और अस्मिता - पृ. 7
165. तसलीमा नसरीन - हंस, नवंबर-दिसंबर 1999 - पृ. 7
166. मैत्रेयी पुष्पा - 'चाक' फ्लैप से
167. मैत्रेयी पुष्पा - चाक - पृ. 400
168. मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम् - पृ. 358
169. वही - पृ. 258
170. वही - पृ. 308
171. वही - पृ. 325
172. चित्रा मुद्गल - एक ज़मीन अपनी - पृ. 187
173. मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी - पृ. 372
174. वही - पृ. 372
175. कान्तिकुमार 'समय के साथ चाक पर घूमती हुई औरत' 'वसुधा' जुलाई-सितंबर 1998 - पृ. 298

